सत्य-ग्रन्थ-माला, संख्या १५

मेरी जर्मन-यात्रा

लेखक

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

रचयिता

'मेरी कैलाश-यात्रा', 'संजीवनी-बूटी', 'अमरीका-दिग्दर्शन'
'अमरीका भ्रमण', 'सत्य निबन्धावली', 'लेखन-कला' इत्यादि

"Is Germany downhearted? No. With the Herculean determination the Germans are busy in their national reconstruction."

—*Deva Dutt*

पौष सं० १९८६

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर
सत्य-ग्रन्थ-माला, आफ़िस, ज्वालापुर यू० पी०

मूल्य
एक रुपया

प्रकाशक—' सत्य ग्रन्थ माला '
आफिस, अलमोड़ा ।

नम्र निवेदन

मेरे प्रेमी पाठको ! 'सत्य-ग्रन्थ-माला' को फिर नए सिरे से अपने हाथ में लेने की खुशी में मैं आप को सप्रेम 'वन्दे मातरम्' कहता हूं। मेरे अनुभव ने मुझे बतलाया है कि साहित्य-सेवा का काम सब से अच्छा और स्थायी होता है। जो काम मेरी पुस्तकों ने किया है वह मेरे व्याख्यानों द्वारा नहीं हुआ। यही देख कर मैंने शान्ति से बैठ कर साहित्य रचना करने का निश्चय कर लिया है।

मुझे ईश्वर ने इसी काम के लायक बनाया है। क्रान्तिकारी राजनीति अथवा वैध आन्दोलन, दोनों मेरे अनुकूल नहीं। पिछले में मेरा विश्वास नहीं और पहलेके प्रचण्ड झोंकों में पड़ने लायक मेरी आंखें नहीं, अतएव अनधिकार चेष्टा न कर अब मैंने अपने बाकी जीवन के लिए निज उपयुक्त काम पकड़ लिया है।

मैंने कभी सन्त, महात्मा, माननीय, अथवा लीडर होने का दावा नहीं किया। दोषों से भरा हुआ मैं अपने देश का क तुच्छ सेवक हूं। जो कुछ मुझ से बन पड़ता है, जैसे जैसे र मुझे प्रकाश देते हैं उसी अनुसार मैं सेवा करता जाता मैं समझता हूं कि कुछ वर्ष मुझे धर्मान्धता के विरुद्ध काम ना चाहिये और देश की जनता को मज़हबी गुलामी से

छुडाना चाहिए। मैं Nationalalism राष्ट्रीयता के साथ साथ Rationalism युक्तिवाद का भी प्रचार करूगा। छिद्रान्वेषी इसे प्रोग्राम बदलना कहते हैं पर मैं इसे भी स्वाधीनता की लड़ाई ही समझता हू।

अपने प्रेमी पाठकों की शिकायत दूर करने के लिए सबसे पहले 'सजीवनी बूटी' और 'अमरीका-भ्रमण' के द्वितीय भाग निकाले जायेंगे। इसके बाद दूसरी आवश्यक पुस्तकें प्रकाशित होंगी। डाक्टरों की राय है कि मैं मैदान की गरमी से बच कर पहाड़ों में रहू, इस से आँखों को विशेष लाभ होगा। जिस आँख का इलाज जरमनी में हुआ है, मैं उसी से पढ़ लिख सकता हू, दूर से देखने के काम की वह भी नहीं है, दाहिनी आँख से पढ़ लिख भी नहीं सकता। अपनी इस थोड़ी पूजी का लाभ, मेरे प्यारे पाठको, मैं आप को देना चाहता हू। इसी कारण मैंने अलमोड़ा रहने का विचार किया है।

मुझे विश्वास है कि जिस यात्रा का आनन्द लेने में हज़ारों रुपये खर्च हुए हैं उस का एक रुपया मूल्य किसी सहृदय ग्राहक को नहीं अखरेगा।

अगहन शुक्ल पक्ष, स० १९८१

प्रार्थी—
सत्यदेव परिव्राजक

भूमिका

सन् १९२३ का वर्ष जर्मन-राष्ट्र के जीवन में उस के दुखों की चरमसीमा का साल था। जरमन जाति के इतिहास में इस वर्ष के दारुण दुखों की कथा खूनी अक्षरों में लिखी जाएगी। ऐसे भीषण समय में मैं जरमनी में था। भूखे स्त्री पुरुषों के चेहरों को मैंने देखा है, क्षुधातुर बालकों की करुणा जनक निगाहें मुझे भूलने वाली नहीं। युद्ध में शेरों की तरह लड़ने वाले जर्मन वीर अपने आपत्काल में कैसे बन गए, इस का दिग्दर्शन मैंने इस पुस्तक में कराया है। जर्मन प्रवासी भारतियों का परिचय, लाला हरदयाल जी के हृदयोद्गार, जर्मन मार्क की रुलाने वाली कहानी, पेरिस की छैल-छबीली रंगीली बातें, जगद्विख्यात रोम नगरके मनोहर नज़ारे, सब इस पुस्तक में दिखलाए गए हैं। यों तो जरमनी जाने का मेरा मुख्य उद्देश्य आंखों का इलाज था, पर एक प्रधान काम के साथ साथ कुछ और गौण काम भी सहज में ही हो गये। पाठकों को इस पुस्तक के पढ़ने से मेरे इन सब अनुभवों का रसास्वादन मिल जाएगा।

मैं इस पुस्तक को छपवाने के लिए बम्बई जा रहा था। विचार था कि इसे सचित्र छपवाऊ, पर आगरे में आकर ऐसा गिरा कि बम्बई जा ही न सका। आगरे के सधानियों

पबलिशिङ्ग हाउस, के साथ मेरा अब कोई किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रहा। मैंने स्वयं स्वतंत्र इस पुस्तक को प्रकाशित करवाया है। इस पुस्तक का टाइप, कागज़ और टाइटल का कागज़ सब मेरे पसन्द है पर छपने में कई भद्दी भूलें रह गई हैं; लाला हरदयाल जी की पुस्तक का नाम तक गलत छप गया है; छपाई भी मेरे मन लायक नहीं हो सकी। ऐसे वैज्ञानिक युग में मेरे जैसे पुरुष को सर्वोत्तम काम करवाना चाहिए। मैं वायदा नहीं करता पर भविष्य में इस इच्छा को पूरा करने वाले साधनों को जुटाने की चेष्टा करूंगा।

आगरे में मैं भाई श्री कृष्णदत्त पालीवाल जी एम० एल० सी० के यहां रहा। जिस प्रेम से आपने मेरी सेवा की और प्रूफादि देखने में मेरी मदद की, उस के लिये मैं आप का बड़ा आभारी हूं।

विनीत—
सत्यदेव परिव्राजक।



सूचीपत्र

मेरी जर्मन-यात्रा

प्रथम खण्ड

आँखों की शिकायत

मेरी आँखें बचपन से खराब हैं। स्कूल में जब मास्टर गणित के प्रश्न बोर्ड पर लिखा करता था तो मुझसे वे प्रश्न पढ़े नहीं जाते थे। इसलिये मैं बोर्ड के नजदीक जाकर बैठा करता था। मेरी आँखों में कोई खास बीमारी नहीं है, केवल "Shortsightedness" अर्थात् मायूपिया है, और वह भी बहुत अधिक दर्जे का। पंजाब में उन दिनों कनकौवे उड़ाने का बहुत रिवाज था, खास कर लाहौर में तो छोटे बड़े सभी कनकौवे उड़ाया करते थे। अब यह रिवाज आगे से कम हो गया है। मुझे याद है कि जब मैं कनकौवा उड़ाने के लिये छत पर जाया करता था तो दूसरों के कनकौवे दूर होने के कारण प्राय मुझे दिखाई नहीं देते थे इसलिये दूसरे लोग मेरा कनकौवा सहज में काट डालते थे। इसी प्रकार बड़ा सुन्दर शरीर रहने पर भी मैं भली प्रकार क्रिकेट नहीं खेल सकता था क्योंकि रोशनी कम होने पर मैं गेंद को अच्छी तरह देख नहीं सकता था। मुझे यह भी याद है कि मेरे साथ पढ़ने वाले विद्यार्थी

अक्सर मेरी आंखें खराब होने के कारण मुझसे दिल्लगी भी किया करते थे।

एक बार अत्यन्त दुखी होकर मैंने अपने पिता जी से इसकी शिकायत की। वे मुझे एक डाक्टर के पास ले गये। डाक्टर ने मेरी आँखों की परीक्षा कर पिता जी से कहा, "इस लड़के का पढ़ना लिखना बन्द करा देना चाहिये। यदि ऐसा न किया गया तो चालीस वर्ष की आयु के बाद इस की बीनाई जाती रहेगी।" पिता जी बोले, "यदि पढ़ेगा नहीं तो खायेगा क्या, पत्थर।" ऐसा कहकर वे मुझे घर ले आये। डाक्टर ने यह भी सलाह दी थी कि इस लड़के को अण्डा और मास खाना चाहिये ताकि इसकी आंखों में ताक़त आजाय, लेकिन चूकि मैं डी० ए० वी० स्कूल में पढ़ा करता था इसलिए स्वाभाविक ही मास खाने का विरोधी था, और न मैंने पहिले कभी मास खाया था।

आँखों की इस कमज़ोरी ने मेरी बड़ी हानि की। अच्छी बुद्धि होने पर भी मैं पढ़ने लिखने में पीछे रहा। स्वभाव से मैं बड़ा सकोची था। एक तो आँखों की कमज़ोरी दूसरे स्वभाव में सकोचपन, परिणाम यह होता था कि जो पाठ मास्टर लोग बोर्ड द्वारा पढ़ाया करते थे उसे मैं अच्छी तरह से समझता नहीं था। १८९७ में एंट्रेन्स पास कर लेने के बाद मैंने चश्मा खरीदा। उस समय मेरी अवस्था १८ वर्ष के लगभग थी। चश्मे से पढ़ने लिखने में सुभीता हो गया पर दूर से देखने की दिक्कत बराबर बनी रही। आगे चल कर जब अवस्था बड़ी हुई तो दूर से देखने

का चश्मा अलग खरीदना पड़ा। मोटे २ शीशों के चश्मे लगाने पर भी मुझे अधिक दूरी से दिखाई नहीं देता था। डाक्टरों से प्राय हर साल सलाह लेनी पड़ती थी। पढ़ने का अत्यन्त शौक़ होने पर भी मैं अपने समय का पूरा लाभ न ले सका। मैं कालेज में भी पढ़ा पर आंखों की उसी कमजोरी की दिक्क़त ने मुझे भली प्रकार चैतन्य न होने दिया। सन् १९०५ से लेकर सन् १९११ तक का मेरा जीवन पूरी चैतन्यता का जीवन है। अमरीका की जलवायु ने मेरी आंखों को बहुत लाभ पहुंचाया, मेरा शरीर भी सुन्दर सुडौल हो गया और विद्याभ्यास तथा निरीक्षण करने का अवसर भी मुझे खूब मिला।

अमरीका से भारत लौटने पर मुझे आँखों से अधिक काम लेने की आवश्यकता पड़ी। सत्य-ग्रन्थ-माला की पुस्तकें प्रकाशित कराने का सारा काम मेरे ज़िम्मे था। प्रूफ़ देखने, उनका बारबार संशोधन करने का काम आंखों के लिये अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हुआ और ७-८ वर्षों के अन्दर मेरी आँखों की अवस्था बहुत खराब हो गई। एक तो राष्ट्र धर्म प्रचारार्थ निरन्तर भ्रमण से धूप का ताप आंखों को लगा, दूसरे निरंतर व्याख्यान देने से दौरे पर रहने के कारण खाने पीने की गड़बड़ रहती थी, समयानुकूल भोजन न मिलता था, तीसरे प्रूफ़-संशोधन करते की मेहनत, इन सब कारणों से आंखों को भारी नुक़सान पहुंच गया और सन् १९१८ के आरम्भ में ही मेरी दाहिनी आंख पर मोतिये का आवरण आरम्भ हो गया। धीरे धीरे आंखों की ज्योति कम होने लगी परन्तु ऐसी कम न हुई कि मोतिया आसानी

अक्सर मेरी आंखें खराब होने के कारण मुझसे दिल्लगी भी किया करते थे।

एक बार अत्यन्त दुखी होकर मैंने अपने पिता जी से इसकी शिकायत की। वे मुझे एक डाक्टर के पास ले गये। डाक्टर ने मेरी आँखों की परीक्षा कर पिता जी से कहा, "इस लड़के का पढ़ना लिखना बन्द करा देना चाहिये। यदि ऐसा न किया गया तो चालीस वर्ष की आयु के बाद इस की बीनाई जाती रहेगी।" पिता जी बोले, "यदि पढ़ेगा नहीं तो खायेगा क्या, पत्थर।" ऐसा कहकर वे मुझे घर ले आये। डाक्टर ने यह भी सलाह दी थी कि इस लड़के को अण्डा और मास खाना चाहिये ताकि इसकी आखों में ताक़त आजाय, लेकिन चूंकि मैं डी० ए० वी० स्कूल में पढ़ा करता था इसलिए स्वाभाविक ही मांस खाने का विरोधी था, और न मैंने पहिले कभी मास खाया था।

आँखों की इस कमजोरी ने मेरी बड़ी हानि की। अच्छी बुद्धि होने पर भी मैं पढ़ने लिखने में पीछे रहा। स्वभाव से मैं बड़ा सकोची था। एक तो आँखों की कमजोरी दूसरे स्वभाव में संकोचपन, परिणाम यह होता था कि जो पाठ मास्टर लोग बोर्ड द्वारा पढ़ाया करते थे उसे मैं अच्छी तरह से समझता नहीं था। १८९७ में एंट्रेन्स पास कर लेने के बाद मैंने चश्मा खरीदा। उस समय मेरी अवस्था १८ वर्ष के लगभग थी। चश्मे से पढ़ने लिखने में सुभीता हो गया पर दूर से देखने की दिक़्क़त बराबर बनी रही। आगे चल कर जब अवस्था बड़ी हुई तो दूर से देखने

का चश्मा अलग खरीदना पड़ा। मोटे २ शीशों के चश्मे लगाने पर भी मुझे अधिक दूरी से दिखाई नहीं देता था। डाक्टरों से प्राय हर साल सलाह लेनी पड़ती थी। पढ़ने का अत्यन्त शौक़ होने पर भी मैं अपने समय का पूरा लाभ न ले सका। मैं कालेज में भी पढ़ा पर आंखों की उसी कमजोरी की दिक्कत ने मुझे भली प्रकार चैतन्य न होने दिया। सन् १९०५ से लेकर सन् १९११ तक का मेरा जीवन पूरी चैतन्यता का जीवन है। अमरीका की जलवायु ने मेरी आंखों को बहुत लाभ पहुंचाया, मेरा शरीर भी सुन्दर सुडौल हो गया और विद्याभ्यास तथा निरीक्षण करने का अवसर भी मुझे खूब मिला।

अमरीका से भारत लौटने पर मुझे आँखों से अधिक काम लेने की आवश्यकता पड़ी। सत्य-ग्रन्थ-माला की पुस्तकें प्रकाशित कराने का सारा काम मेरे ज़िम्मे था। प्रूफ देखने, उनका बारबार संशोधन करने का काम आंखों के लिये अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हुआ और ७–८ वर्षों के अन्दर मेरी आँखों की अवस्था बहुत खराब हो गई। एक तो राष्ट्र-धर्म प्रचारार्थ निरन्तर भ्रमण से धूप का ताप आंखों को लगा, दूसरे निरंतर व्याख्यान देने से दौरे पर रहने के कारण खाने पीने की गड़बड़ रहती थी, समयानुकूल भोजन न मिलता था, तीसरे प्रूफ-संशोधन करने की मेहनत, इन सब कारणों से आंखों को भारी नुक़सान पहुंच गया और सन् १९१८ के आरम्भ में ही मेरी दाहिनी आंख पर मोतिये का आवरण आरम्भ हो गया। धीरे धीरे आंखों की ज्योति कम होने लगी परन्तु ऐसी कम न हुई कि मोतिया आसानी

सहायक डाक्टर यथावकाश मुझे देखने के लिये आते थे और एक खुफिया पुलिस का दूत इन दोनों सज्जनों से मेरी आंख की दशा पूछने आता था, मानो पंजाब की सरकार को मेरी आंख की खास तौर से चिंता थी। सात दिन के बाद मेरी आंख की पट्टी खोली गई और मैं अपनी आंख की विचित्र दशा देखकर बड़ा हैरान हुआ। भयभीत होकर मैंने देखा कि मेरी आंख की रोशनी बहुत मध्यम है। मैंने मोगा से चलने की ठानी।

जिस डाक्टर मथुरादास के विश्वास पर मैं इतनी दूर से मोगा आया था वे डाक्टर जी लाहौर में बीमार पड़े थे, मेरी आंख की पट्टी भी उन्होंने नहीं खोली, जिन्होंने पट्टी खोली उन पर मेरा तनिक भी विश्वास न था। अब मैं अपने दिल का दर्द किससे कहता। अत्यन्त बेचैन होकर रात के समय मैं मोगे से निकला। मेरे अन्दर तरह २ के भाव उठ रहे थे। शंकित हृदय के भावों को लिखने की सामर्थ्य इस लेखनी में नहीं।

——— ❀ ———

तीसरा अध्याय

मेरा नया अनुभव

ईश्वर ने मुझे बड़ा अच्छा शरीर दिया है। सिर दर्द, बुखार, खांसी आदि शारीरिक कष्टों को मानों मैं जानता ही नहीं। मतवाले हाथी की तरह मैं सदा विचरा करता था। यद्यपि मेरी

आंखें कमजोर थीं परन्तु ऐसी कमी नहीं कि जो मेरे नित्यके कार्य में बाधा डालें। पढ़ने लिखने तथा अन्य कार्य करने में मेरी आखें मुझे कोई खास तकलीफ़ न देती थीं, काम चलता था। जब मे मोतिया हुआ था तब से कुछ दिक्कत घूमने फिरने में होने लगी थी, लेकिन चूंकि डाक्टर मथुरादास ने यह पूरा विश्वास दिलाया था कि आपरेशन के बाद आंख बहुत अच्छी हो जायेगी इस लिये मैंने कभी विशेष चिन्ता न की थी। अपने जीवन में पहलीबार मुझे एक विचित्र निराशा ने आघेरा। मैं मोगा से लाहौर आया। डाक्टर मथुरादास जिस बंगले पर ठहरे हुये थे वहां गया मगर उनकी दशा ऐसी न थी कि वे बेचारे मेरी आख की परीक्षा कर सकते। लाहौर में दो तीन दिन रहने के बाद मैं रोहतक चला गया और वहां के डाक्टर श्रीरामजी को आंख दिखलाई। उन्हीं की सलाह से वहां कुछ दिन ठहर कर आंख की दवाई करता रहा किंतु आंख की असली त्रुटि उन्होंने मुझे नहीं बतलाई, यदि वे उस वक्त मुझे साफ साफ मथुरादासजी के किये हुए आपरेशन का दोष बतला देते तो मैं फौरन बम्बई जाकर आंख का कुछ उपाय करता मगर न जाने उन्होंने क्यों मुझे सत्य बात नहीं बतलाई। रोहतक से मैं आगरे आया और वहां के आखों के अस्पताल के हिंदुस्तानी डाक्टर को आंख दिखलाई। उसने यह कहा कि कुछ दिनों के बाद आंख ठीक हो जायेगी, आख को आराम की जरूरत है, उनकी बातों पर विश्वास कर मैं आंखों को आराम देने के लिये अल्मोड़े रवाना हुआ और सोचा कि अल्मोड़े की शीतल पवन मेरी आंख को अच्छा कर

देगी और बहुत शीघ्र मैं भली प्रकार पढ़ने लिखने लग जाऊंगा, परन्तु होनहार की लीला कौन जाने। मनुष्य सोचता कुछ है पर ईश्वर करता कुछ है।



चौथा अध्याय

काकड़ीघाट की पहली लड़ाई

अलमोड़ा मुझे बड़ा प्यारा है। अमरीकासे आने के बाद मैंने यहीं से स्वतन्त्रता प्रचार का कार्य आरम्भ किया। मनुष्य के अधिकारों की शिक्षा पहले पहल यहीं दी गई और यहीं 'मनुष्य के अधिकार' नामक पुस्तकका ढांचा तैयार हुआ। प्रायः देशमें राष्ट्रधर्म प्रचार करते हुए जब २ अधिक काम करने के कारण मैं थक जाता था तो अल्मोड़ा की ओर ऐसा भागता था जैसे बच्चा अपनी माता की गोद में भागता है। यहां का जलवायु मेरे शरीर के अत्यन्त अनुकूल है। इस ज़िले की जनता मुझे खूब जानती है और मुझे अपना सच्चा सेवक समझती है। मैंने जितने व्याख्यान निरन्तर ठहर कर अल्मोड़े में दिये हैं ऐसे बहुत कम शहरों में दिये होंगे भारत के अन्य प्रान्तों की पुलिस की तरह कमायूं की पुलिस भी मुझे भली प्रकार पहचानती है, क्योंकि अल्मोड़े की नारायनतेवाड़ी देवाल के समीप जिस शान्त कुटी में मैं रहा करता था उसकी छत पर अमरीका की रिपब्लिक का नीला, लाल और सफ़ेद रंग का

सुन्दर रेशमी झंडा फहराया करता था, इस लिये अंग्रेज राज्य कर्मचारियों तथा पुलिस की नजरों में मैं एक बड़ा भयानक क्रान्तिकारी जन्तु समझा जाता था। सन् १९२१ के मार्च महीने के अन्तिम सप्ताह में अल्मोड़ा की पुलिस को मेरे कमायूं आने की इत्तला मिली। आगरे से तार द्वारा उन्हें सूचना मिली कि स्वामी सत्यदेव अल्मोड़ा आरहा है। बस फिर क्या था। डिस्ट्रिक्ट मेजिस्ट्रेट ने झट मेरे नाम १४४ धारा का नोटिस निकाल दिया, जिसके अनुसार मुझे अल्मोड़े में व्याख्यान देने की मनाही होगई। पुलिस ने मेरे साथ युद्ध करने की तैयारियाँ करलीं।

अपने आँखों के दुःख से दुखी, नेत्रों पर पट्टी बांधे हुए मैं काठगोदाम से अल्मोड़े जारहा था। पुलिस की कार्यवाहियों के विषय में मुझे कुछ भी मालूम न था। अल्मोड़ा पहुंच कर जब मैं डांडी से उतरा तो पुलिस के दारोगा ने मुझे वह आर्डर दिखलाया। मैंने उस कागज को उठा कर फेंक दिया और दारोगा से कहा, "मजिस्ट्रेट साहब से जाकर कह देना कि उसने एक बीमार आदमी पर हमला किया है। आखों की तकलीफ के कारण मैं व्याख्य न देने में असमर्थ हूं। जब मेरी आँख अच्छी हो जायेगी तो मैं फौरन इस १४४ धारा को तोड़ूंगा।" शहर के प्रेमी लोग मुझे मेरे निवासस्थान पर लेगये और दारोगा ने उस नोटिस को मेरे दर्वाजे पर चिपकवा दिया। मैंने उस नोटिस को उतरवाया और उसे फाड़ कर फेंक दिया। नौकरशाही के साथ वाक्-स्वतंत्रता का युद्ध आरम्भ होगया।

अब आगे की सुनिए। ४ अप्रेल को मैंने मजिस्ट्रेट के नाम एक चिट्ठी* लिखी। उसमें मैंने अपनी आंखों की दशा बतलाई और यह भी लिखा कि मेरे जैसे बीमार आदमी को, जो व्याख्यान देने में असमर्थ है, १४४ धारा का नोटिस देना कायरता है, यह तो नीचे गिरे हुए आदमी की पीठ में छुरी भोंकना है, मजिस्ट्रेट साहब यदि युद्ध चाहते हैं तो उनको उनकी मर्जी के मुताबिक युद्ध मिलेगा, अब भी यदि वे बुद्धिमान् हैं तो उस आर्डर को वापिस ले लें। मुझे इस चिट्ठी का कुछ भी उत्तर नहीं मिला। तब मैंने एक रजिस्ट्री चिट्ठी द्वारा मजिस्ट्रेट को सूचना दी कि मई की पहली तारीख को १४४ धारा की नाक काटी जायगी। बिजली की तरह यह खबर सारे शहर में फैल गई। अखबारों द्वारा जनता को पता लगा कि अल्मोड़े में पहली मई को वाक्-स्वतन्त्रता का युद्ध होने वाला है। बरेली डिवीजन के बड़े राज्य कर्मचारियों के पिस्सू पड़ गये। अल्मोड़े के मजिस्ट्रेट के होश ठिकाने आये और २५ अप्रेल को मजिस्ट्रेट साहब ने अपने उसी दारोगा के हाथ मुझे पत्र भेज कर अपने उस हुक्म

---

* यह चिट्ठी प्रयाग के अंग्रेजी दैनिक अखबार 'इंडिपेन्डेन्ट' में छपी थी। मैं यहां वह चिट्ठी तथा उसके सम्बन्ध की सूचनायें जो समाचार पत्रों में प्रकाशित हुई थीं उद्धृत नहीं करता। भविष्य में जब कभी किसी लेखक को इस विषय में जानने की आवश्यकता पड़े तो वे 'इंडिपेन्डेन्ट' के फ़ाइल में उनकी तलाश कर सकते हैं, क्योंकि वे रोचक हैं। लेखक—

को वापिस ले लिया। बस फिर क्या था। अल्मोड़ा शहर के लोग इस विजय पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और रात को शहर में रोशनी की गई। इसी बीच मारवाड़ जंक्शन से भेजा हुआ महात्मा गांधी जी का एक तार* मुझे मिला, जिसमें उन्होंने १४४ धारा न तोड़ने का आदेश किया था, परन्तु यहां तो विजय भी हो चुकी थी।

पहली मई को, सूचना के अनुसार, हजारों आदमी जिले भर के ग्रामों से मेरा व्याख्यान सुनने के लिये अल्मोड़ा आये। मजबूरन मुझे व्याख्यान देना पड़ा और जनता के सामने सब बातें सच सच रखनी पड़ीं। नौकरशाही के विरुद्ध इस अनोखी विजय के समाचार सुन कर जनता को बड़ा आल्हाद हुआ और सब लोगों ने बड़े जोर से जय घोषणा की। 'शक्ति' के सम्पादक पंडित बद्रीदत्त जी पांडे तथा पंडित हेमचन्द्रजी जोशी ने मेरी इस मौक़े पर बड़ी सेवा की, शहर के अन्य प्रेमियों ने भी बराबर मेरा साथ दिया। उन सब का मैं हृदय से धन्यवाद करता हूं।

वाक्स्वतंत्रता की इस पहिली लड़ाई की कथा समाप्त करने के पहले मैं, प्रयाग के प्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक पत्र 'इन्डिपेन्डेन्ट' के

* महात्मा गान्धी जी का निम्न लिखित तार मुझे मिला था—

I would urge you not to disobey order unless you have good independent reasons— Gandhi

—लेखक

बाहर नहीं। जब पाश्चात्य लोग पूरब में आवें तो उन्हें पूरब के प्रचलित प्राचीन क़ानूनों के अनुसार चलना चाहिए। हमें केवल इतना ही और कहना है कि हमारी सम्मति में सरकारी हुक्म का वापिस लेना तथा तत्सम्बन्धी परिणाम केवल भगदड़ के कारण हुआ है। राज्यकर्मचारी बहुत अधिक उद्विग्न हैं, लेकिन उन्हें स्वामी सत्यदेव जैसे सच्चे देश सेवकों का कृतज्ञ होना चाहिए, क्योंकि नौकरशाही पर पड़े हुए बोझ के दूर होने में बहुत विलम्ब नहीं।

पांचवाँ अध्याय

वाक्स्वतंत्रता के दूसरे युद्ध की तय्यारियां

जिस जाति की सब प्रकार की स्वतन्त्रता छिन गई हो, जो शताब्दियों से विदेशियों के पांव तले रौंदी गई हो, जिसके नागरिकों का जीवन पशुओं से भी बदतर हो गया हो, उस जाति के बच्चे "वाक्-स्वतन्त्रता" की महिमा भला क्या समझ सकते हैं। सन् १९११ में जब मैं अमरीका से लौट कर आया था, तो मैंने अपने देश के लोगों को अपनी पुस्तक 'मनुष्य के अधिकार' के द्वारा "वाक्स्वतन्त्रता" के पवित्र आदर्श को समझाने की चेष्टा की थी। उस समय किसी ने भी मेरी आवाज़ न सुनी। मेरी पुस्तक उनको अच्छी लगी, मेरे ख्यालात भी उनको प्यारे लगे,

लेकिन बलिदान कौन करे ? स्वतन्त्रता के साथ बलिदान का घनिष्ट सम्बन्ध है। बिना बलिदान के स्वतंत्रता मिल नहीं सकती। विदेशियों के ऊपर सोलह आना निर्भर तथा खुशामद के गहरे गढ़े में गिरे हुए हिन्दुस्तानी स्वतन्त्रता के लिये कुछ बलिदान करने को तय्यार न थे। वे चाहते थे कि उन्हें पका पकाया तय्यार खाना मिल जाय, उद्योग कुछ भी न करना पड़े,ऐसा कब सम्भव था।

भारतवर्ष अपनी प्राचीन सभ्यता रखता है, इस लिये यहां स्वतंत्रता का युद्ध पाश्चात्य ढंग से नहीं हो सकता। यहां के लोगों को जब तक अपने प्राचीन आदर्शों की झलक दिखाई न देगी तब तक उनमें जागृति होना असम्भव है। अतएव योरुप के भयंकर युद्ध के बाद जब भारतीय जनता रोलेट और पंजाब के अत्याचारों तथा खिलाफत के धार्मिक प्रश्न के कारण शान्तिमय असहयोग का जबर्दस्त प्रवाह देश में चला तो मानो शिवजी की जटाओंमे साक्षात् भागारथी हमारे पाप धोने के लिये उतर आई। इस प्रवाह में स्नान करने के लिये सब प्रकार के गुनहगार दौड़े। उनको एक अमूल्य अवसर अपने पापों के धोने का मिल गया। जाति में मानों नई चैतन्यता आ गई। नौकरशाही भी सावधान होकर असहयोग आन्दोलन को दमन करने पर उद्यत हुई। इस का प्रचार रोकने के लिये उसने १४४ धारा के मनमाने अर्थ लगा कर उसको अपना दमनास्त्र बनाया। देश की कांग्रेस ने सविनय आज्ञाभंग करने का हुक्म नहीं दिया था इसलिये नौकरशाही मनमाने तौर पर इस धारा का प्रयोग करने लगी। राज्य कर्मचारी

जानते थे कि, स्वतन्त्रता का मूलोच्छेद करने के लिए अगर कोई शस्त्र अत्यन्त उपयोगी हो सकता है तो यह 'वाक्-स्वतन्त्रता' नष्ट करने वाला क़ायदा है, क्योंकि जब बोलना बन्द कर दिया जायगा तो वाणी प्रवाह आसानी से रुक सकेंगे। इस लिये १४४ धारा का प्रयोग हिन्दुस्तान में बड़े ज़ोर शोर से होने लगा। मैं चूंकि पहिले से ही असहयोगी था और मैंने अपने पर्चों के प्रचार में, अन्याय का विरोध करना ईश्वरीय आज्ञा का पालन करना है, इस सत्य सिद्धान्त की घोषणा की थी इस लिये कांग्रेस का विरुद्ध-प्रस्ताव रहते हुए भी मैंने अल्मोड़ा में १४४ धारा का सविनय भंग किया था।

वाक्-स्वतन्त्रता के इस पहिले युद्ध को मैंने जीत तो लिया पर आंख को नुक़सान पहुंचा कर। अल्मोड़ा में कोई डाक्टर मेरी सहायता करने वाला न था, इस लिये मैंने बम्बई जाने का विचार किया। इरादा यह किया कि फर्रुखाबाद में पांच सात दिन ठहर कर आश्रम सम्बन्धी कुछ काम निपटा मैं सीधा बम्बई चला जाऊंगा। वहां बड़े बड़े प्रसिद्ध डाक्टर हैं, वे मेरी बिगड़ी हुई आंख को ठीक कर लेंगे, पर, "मेरे मन कुछ और है, तेरे मन कुछ और।"

१७ मई को फर्रुखाबाद के स्टेशन पर उतरते ही १४४ धारा के फिर दर्शन हुए, मानो नौकरशाही ने मुझ से बदला लेने की ठानी थी। आंखों पर पट्टी बांधे हुए, दूसरी आंख में मोतिया, सहारा लेकर चलने वाले बीमार के ऊपर १४४ धारा का प्रयोग?

इससे बढ़ कर हिमाक़त क्या हो सकती थी, पर नौकरशाही के मदान्ध अधिकारियों को समझावे कौन ? पुलिस का जो दूत हुक्म ले कर आया था उससे मैंने कहा, "सन्यासी स्वतंत्र होते हैं वे राजाओं के भी राजा हैं। अपने अफ़सर से जाकर कह देना कि स्वामी सत्यदेव आप के इस हुक्म को नहीं मानता, वह इस आज्ञा का तोड़ेगा।" पुलिस का दरोगा अपना सा मुंह लेकर चला गया।

फर्रुखाबाद में मैं ठहर गया। एक डाक्टर दोनों समय मेरी आंख को धोने के लिये आता था। शहर के मैजिस्ट्रेट को मेरी आंखों की दशा भलीप्रकार विदित होगई, किन्तु तिस पर भी उसने अपना आर्डर वापिस न लिया। मैं बम्बई जाना चाहता था लेकिन नज़रबन्दी का क़ानून अपनी पीठ पर लाद कर लेजाना मेरे लिये असह्य था। मैं जानता था कि दूसरी बार क़ानून भंग करने से मेरी आंख खतरे में पड़ जाएगी पर कर्त्तव्य के सामने मेरी कुछ पेश न जाती थी। आख़िर हृदय पर पत्थर रख कर मैंने वाक् स्वतन्त्रता के दूसरे युद्ध की ठानी और मजिस्ट्रेट के पास रजिस्ट्री पत्र द्वारा १४४ धारा तोड़ने की सूचना भेज दी। १२ जून का दिन दंगल के लिये निश्चित होगया। जो पत्र मैंने मजिस्ट्रेट के पास भेजा था उसमें यह बात स्पष्ट तौर से लिखदी थी कि व्याख्यान देने से मेरी आंख को नुक़सान पहुँच जायगा इस लिये कृपया मुझे फ़ौरन जेल में भेज दीजिये। मैंने यह भी लिख दिया था कि आप इस पत्र को आज्ञा भंग करने के तुल्य ही समझें

और मैं क़ानून के तोड़ने के अपराध को स्वीकार कर लूंगा ताकि मजिस्ट्रेट आसानी से मुझे जेल भेज सके। मजिस्ट्रेट भला मेरी बात क्यों मानने लगा था उसको अब तक भी यही विश्वास था कि सत्यदेव क़ानून भंग नहीं करेगा। अब लाचार होकर मैंने लड़ाई का निश्चय कर मोरचा लगा दिया।

——❀——

छठा अध्याय

फ़र्रुख़ाबाद का दूसरा युद्ध

फ़र्रुख़ाबाद के इर्द गिर्द के ज़िलों में मेरे सत्याग्रह करने की ख़बर बात ही बात में फैल गई। पत्रों में इसकी चर्चा होने लगी। मजिस्ट्रेट ने एक बीमार सन्यासी पर ऐसा कायरतापूर्ण हुक्म निकाला है, यह जान कर जनता क्षुभित हो उठी और आने वाले युद्ध के दिन की बड़ी आतुरता से बाट जोहने लगी। शहर के लोगों में विचित्र उत्साह पैदा हुआ। हिन्दू और मुसलमान दोनों को मेरे साथ बड़ी सहानुभूति थी। शहर के नेताओं ने इस सत्याग्रह के सम्बन्ध में विज्ञापन छपवा कर उसकी हज़ारों प्रतियां मैनपुरी, शाहजहांपुर, हरदोई, कानपुर और एटा आदि ज़िलों में बटवाईं। लड़ाई की धूम चारों तरफ़ मच गई। इसी बीच पण्डित मोतीलाल नेहरूजी का निम्न लिखित तार अल्मोड़े से मुझे मिला—

Letter received here Strongly advise not disobey order at present

जिसका आशय यह है—

पत्र आपका यहां मिला। मैं आग्रहपूर्वक सम्मति देता हूं कि आप इस समय क़ानून भंग न करें।

इस तार को पाकर मैं मुसकराया। पंडित नेहरूजी को मेरे हृदय के भावों के विषय में क्या मालूम, वे नहीं जानते थे कि मैं कैसा कट्टर असहयोगी हूं और ऐसे क़ानून को बर्दाश्त करने की अपेक्षा मेरे लिए मरजाना अच्छा था। मैंने इस तार के उत्तर में पंडित जी को लिखा—

To me the ideal of free speech is as sacred as chastity to a woman

इसका अर्थ यह है—

मेरे लिए वाक्स्वतन्त्रता का आदर्श ऐसा ही पवित्र है जैसा कि एक स्त्री के लिए सतीत्व धर्म।

× × × ×

युद्ध का दिन निकट आने लगा। शहर के लोग बराबर मुझ से मिलने और मेरी दशा देखने के लिये आते थे। कई सज्जनों ने मेरी आंखों की खराब हालत देख कर मुझे सत्याग्रह करने से रोकना चाहा। सरकारी अस्पताल के बड़े डाक्टर महाशय एक दिन मुझ से मिलने के लिये आए और मेरी आंखों की दशा देख कर बोले—

"आप क़ानून भंग न करें।"

मैंने पूछा—"क्यों न भंग करूं?"

डाक्टर महाशय ने कहा—

"यदि आप क़ानून को भंग करेंगे तो गवर्नमेण्ट आपको जेल में भेज देगी।"

मैंने हंसकर कहा—

"यह तो मैं जानता ही हूं, इसमें आप नई बात कौनसी कहते हैं।"

डाक्टर साहिब गम्भीरता से बोले—

"नई बात इसमें यह है कि जेल में आपको अस्पताल में रक्खेंगे और वहां आपकी आंख में ज़हर डाल देंगे।"

मैंने शान्ति से उत्तर दिया—

"अच्छी बात है। यदि वाक्स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए मुझे अपनी दोनों आंखों का बलिदान भी करना पड़े तो मैं इसके लिए भी तय्यार हूं।"

डाक्टर साहिब निराश होकर उठ खड़े हुए और अपने घर चले गये।

आख़िर १२ जून का दिन आ ही गया। प्रातःकाल से ही शहर में लोगों की भीड़ होने लगी। मालूम होता था मानों कोई मेला है। ब्रह्मचारी हरिप्रसाद इन दिनों मेरे साथ थे। इस युद्ध में निरन्तर वे मेरे साथ रहे। युद्ध की सामग्री जुटा दीगई। तिलक भवन के मैदान में व्याख्यान का प्रबन्ध किया गया। कांग्रेस कमेटी के उत्साही कार्यकर्त्ता पण्डित गंगामहेश जी, लाला लालमणि

गुप्त, पंडित रामदुलारे अवस्थी जी, श्रीयुत शान्तिस्वरूप आदि प्रेमी सज्जन जीजान से मेरी सहायता में डटे हुए थे। ठीक छः बजे हजारों आदमी व्याख्यान सुनने के लिए रणभूमि में पहुचे। आंखों पर पट्टी बांधे हुए ब्रह्मचारी हरिप्रसाद का हाथ पकड़े हुए मैं गवर्नमेंट के इस अत्याचारी क़ानून को भंग करने के लिये तिलक भवन में पहुचा। वह समय मुझे कभी न भूलेगा। जनता आज मेरी आंखों की दशा देख बड़ी दुखी थी। ठीक छः बजे व्याख्यान आरम्भ हुआ। मैंने 'अहिंसा सिद्धान्त की फ़िलोसफ़ी, पर भाषण दिया और संक्षिप्त में श्रोतागणों को इस पवित्र सिद्धान्त का मुख्य आशय समझाया। क़ानून भंग हो गया। मैंने अपना कर्तव्य पालन किया। मजिस्ट्रेट क्या करेगा, यही देखना बाक़ी था।

व्याख्यान के बाद अपने मित्र प्रेमियों सहित मैं अपने स्थान पर आया। शहर में खूब चर्चा हो रही थी, बाज़ारी गप्पें हाकने वाले अपनी मनमानी बका रहे थे। शहर में खूब उत्साह था। मैं अब पुलिस का रास्ता देखने लगा। गवर्नमेंट क्या करेगी? यही प्रश्न सब प्रेमी पूछते थे। रातको शान्तिसे सोए। अब दूसरा दिन भी गुज़र गया और कोई नहीं आया तो मैंने मुरादाबाद जाने की तय्यारी की और सब सामान लेकर स्टेशन पर पहुचा। सन्ध्या हो गई थी। प्लेटफ़ार्म पर मेरे कई प्रेमी आये हुए थे। गाड़ी आने ही वाली थी कि इतने में पुलिस इन्स्पेटर समन लेकर आ पहुचा। गवर्नमेंट ने मेरे ऊपर धावा बोल दिया। मैं फ़ौरन

शहर लौटा। अपने सब प्रेमियों को बुलाया और लड़ाई की तदबीरें सोचीं।

१४ जून को अदालत में मेरी पेशी हुई। फतेहगढ़ में भी गंगाजी के किनारे अन्यायी नौकरशाही का घमण्ड तोड़ने के लिये आज मैं वहां उपस्थित हुआ था। जन साधारण सभी की सहानुभूति मेरे साथ थी। सरकार का नमक खाने वाले 'अभागे भारतीय गुलाम' जबान से तो नौकरशाही का हुक्म बजाते थे पर उनका हृदय मेरे साथ था। जब मुसलमान हाकिम ने मुझसे पूछा कि मैं अपराधी हूं या निरपराधी, तो उत्तर में मैंने कहा—"गवर्नमेण्ट के बनाये हुए अत्याचारी क़ानून के अनुसार मैं अपराधी हूं, पर मेरे जगदीश्वर और आत्मा के क़ानून के अनुसार मैं निरपराधी हूं। मैंने अपनी वाक्स्वतन्त्रता के लिये १४४ धारा को तोड़ा है। मैं यह अपराध स्वीकार करता हूं।"

मेरे विरुद्ध गवाही देने वाला केवल एक ही व्यक्ति था, और वह था सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस। जो कुछ उसने तोते की तरह रटा हुआ था, वही उगल डाला। आज की पेशी खतम हुई और सोलह जून को फ़ैसला सुनाने का निश्चय हुआ।

× × × ×

मजिस्ट्रेट इस मुक़दमे से घबरा गया। भूल से उसने मेरे विरुद्ध १४४ धारा का प्रयोग कर दिया था। उसकी इच्छा मुक़दमा चलाने की न थी, लेकिन यह बला योंही उसके गले में पड़ गई। सरकार के उस झूठे (Prestige) इन्द्रजाल की रक्षा के

लिये अब उसे गले में पड़ा हुआ ढोल बजाना ही पड़ा। सब मलाहकारों को बुला कर उसने कमेटी की ओर मेरे पास दो सज्जनों को यह संदेशा देकर भेजा कि गवर्नमेण्ट मुक़द्दमा उठाने के लिये तैयार है अगर स्वामी सत्यदेव इतना कह दे कि उसके व्याख्यान देने से मजिस्ट्रेट साहब को कुछ कष्ट हुआ है तो उसे इसका दुःख है। मैं भला ऐसा क्यों कहने वाला था। नौकरशाही के इस जाल को मैं खूब समझता था। मेरे ऊपर मुक़द्दमा चला कर मजिस्ट्रेट को लेने के देने पड़ गये। जिस मुसलमान हाकिम के सामने मेरा मुक़द्दमा था उसकी स्त्री को मेरे मुक़द्दमे का हाल सुन कर बड़ा दुःख हुआ और उस देवी ने मेरी पूरी वकालत की। केवल पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट ही एक ऐसा व्यक्ति था जो मेरा विरोधी था। सुना गया है कि काशी के स्वर्गवासी पण्डित सुधाकरजी के लड़के श्री कमलाकरजी जो, इन दिनों वहां डिपटी कलेक्टर थे,मेरे विरोधी थे और उन्होंने बहुत ज्यादा कोशिश मेरे विरुद्ध की थी। यह कहां तक सत्य है इसको भगवान् जाने।

× × × ×

फर्रुखाबाद के इर्द गिर्द के ग्रामों में इस मुक़द्दमे की खबरें फैल गई, इस लिये सोलह जून को हजारों आदमी मेरे मुक़द्दमे का फैसला सुनने के लिये फतहगढ़ पहुंचे। आज देखने योग्य दृश्य था। लोग समझते थे कि नौकरशाही स्वामी सत्यदेव को जेल भेज देगे, इस लिये वे मन माने हथियार लेकर इसका विरोध करने केलिये तैयार होकर आये थे। शहर में आज मुकम्मिल

हड़ताल थी। बहुत सी हिन्दू देवियों ने आज व्रत रक्खा था और ईश्वर से मेरी विजय के लिये प्रार्थना कर रही थीं। मुसलमान भाई भी मेरी मदद करने के लिये बहुत बड़ी संख्या में अदालत में पहुचे हुए थे। लोग यह कह रहे थे कि अगर स्वामी सत्यदेव को जेल हो गया तो आज जलियाँवाला बाग हो जायगा और जिले में बड़ा भारी अनर्थ होगा। बहुत से किसान लोग गंगाजी के किनारे किनारे बैठे थे और मुझे बचाने के उपाय सोच रहे थे। सोलह जून की घटना सचमुच फर्रुखाबाद निवासियों के लिये बिलकुल नई थी। अदालत में मैं अपने कुछ प्रेमी मित्रों के साथ पहुंचा। हाकिम ने फ़ैसला सुना दिया। फ़ैसला क्या था ? सत्यदेव को पचीस रु० जुर्माना या अदालत के उठने तक क़ैद। फ़ैसला क्या था, केवल दिल्लगी थी। जब इस फ़ैसले की ख़बर जनता को पहुंची तो उसके हर्ष की सीमा न रही, क्योंकि यह तो पूर्ण विजय थी। अब जनता मुझे देखने को लालायित हो उठी। उसको इस फ़ैसले पर विश्वास नहीं होता था। हाकिम ने मुझसे पूछा "आप कहां बैठना चाहते हैं ?" मैंने उत्तर दिया "किसी अंधेरी कोठरी में बैठना ठीक होगा क्योंकि मेरी आंखों में कष्ट है।" इस पर सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस बोला, "आप मेरे दफ़्तर में चलें, वहां काफ़ी अन्धेरा है। खस की टट्टी लगी है और पंखा चल रहा है।" मैं उनके कमरे में चला गया। वहां बड़ा आराम था। पुलिस कर्मचारी बारबार आकर मुझसे कोई सेवा टहल पूछते थे। पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट मि० रौबिन्सन ने मेरे साथ दिल खोल कर बातें कीं और अपनी भूल को स्वीकार

किया। सी० आई० डी० की बातों पर विश्वास कर उसने १४४ धारा का हुक्म मेरे विरुद्ध जारी कर दिया था। उसे मेरे विषय में कुछ भी हाल मालूम न था। अब जब उसे मेरे ख्यालात मालूम हुए तो वह मुझसे मिल कर बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने कहा कि आगे को कभी ऐसा क़ानून आपके विरुद्ध जारी न होगा। फ़र्रुख़ाबाद में जब तक मैं रहा वह बराबर मेरे अनुकूल रहा। उसने डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट को भी समझा बुझा कर मेरे अत्यन्त अनुकूल कर दिया।

इधर मैं तो जेल की टट्टी की हवा खा रहा था, उधर बेचारे थाने के दारोग़ा बूट सूट डटे हुये जून की जलती धूप में बाहर खड़े इन्तज़ाम कर रहे थे, और लोगोंसे कहरहे थे, "स्वामी सत्यदेव तो मजे में बैठा हुआ ठण्डी हवा खा रहा है उसको क्या जेल हुआ, जेल तो हम लोगों को हुआ जो बाहर जूनकी धूपमें जल रहे हैं।"

ठीक चार बजे मैं अदालत से निकला और जनता की सेवा में उपस्थित हुआ। लोगों ने बड़े प्रेम से जय जय की घोषणा की और मुझे गाड़ी में बैठा कर फ़र्रुख़ाबाद ले चले। इस विजय से लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ा और उनका उत्साह दस गुना बढ़ गया। प्रसन्न चित्त लोग अपने २ घरों को लौटे और वाक्-स्वतन्त्रता का यह युद्ध पूर्ण सफलतापूर्वक समाप्त होगया। *

---

* वाक् स्वतन्त्रता के इस युद्ध के सम्बन्ध की सब सूचनायें प्रयाग के 'लीडर' दैनिक समाचार इण्डिपेण्डेण्ट के पुराने फ़ाइल में मिल सकेंगी। मैजिस्ट्रेट साहब का फ़ैसला, एडीटर की टिप्पणी आदि सभी कुछ इण्डिपेण्डेण्ट में छपा था। —लेखक

अब मेरा चित्त मुरादाबाद से उठ गया। ७–८ दिन किसी प्रकार मैं ने काटे। पट्टी खोलने के बाद मैं ने देहरादून जाने का निश्चय किया और अठारह जौलाई को डाक्टर त्रिवेदी जी की आज्ञा लेकर देहरादून को रवाना हुआ। देहरादून का यह ऋतु बड़ा सोहावना होता है। दो महीने यहां मेरे बड़े आनन्द से कटे। धीरे धीरे आँख का जख्म अच्छा होने लगा और सितम्बर तक आंख में इतनी रोशनी आगई कि मैं निकट की चीजें देखने लगा। सितम्बर के दूसरे सप्ताह में मैं ने देहरादून छोड़ दिया और अपना प्रचारकार्य फिर आरम्भ किया। १० मार्च को जो ओपरेशन मोगा में कराया था उससे इतने बखेड़ों और झगड़ों के बाद अब जाकर निपटारा हुआ। आंख की पट्टी उतर गई और मैं कुछ काम करने योग्य बना। आंख का अमूल्य पानी(Vitreous) बहुत दर्जे तक निकल गया। थोड़ी सी रोशनी जो बची उसके लिये मैं ने ईश्वर को धन्यवाद दिया।

पाठक, दाहिनी आंख की ओपरेशन की बात तो आप सुन चुके। आइये अब मैं आपको बर्लिन ले चलूं। मेरी बांई आँख का इलाज बर्लिन में होगा।



द्वितीय खण्ड

आठवां अध्याय

पासपोर्ट का झगड़ा

सन् १९२२ के फरवरी महीने में मैं प्रचारार्थ बम्बई पहुंचा। अभी तक मेरे हृदय में जर्मनी जाने का कोई ख्याल नहीं था। एक दिन मैं एक पारसी सज्जन डाक्टर खम्भाता जी से बातें कर रहा था। बातों बातों में ही उन्होंने मुझे जर्मनी के आँखों के प्रसिद्ध डाक्टरों की कुछ बातें बतलाईं। उनकी बात मेरे मन को लग गई और मैं ने निश्चय किया कि बाईं आँख का इलाज जर्मनी जाकर करवाना चाहिए।

निश्चय होते ही साधनों की फ़िकर पड़ी। इरादा करके उसको पूरा करने की धुन मुझ में बचपन से ही है। ईश्वर भी मेरे ऊपर सदा दयालु रहते हैं, वे ठीक अवसर पर सहायक भी भेज देते हैं। बम्बई के प्रसिद्ध देशभक्त भाई बरजोरजी फ्रामजी भरुचा से मेरा परिचय होगया। परिचय होने के बाद आपस का प्रेम बढ़ने में कुछ देर न लगी। भरुचा जी निर्दोष चरित्र के मनुष्य हैं। उनका स्वार्थ त्याग, उनकी सरलता, उनका अदम्य उत्साह सचमुच अनुकरणीय है। आप बालब्रह्मचारी हैं और ब्रह्मचारियों की तरह कठिन तपस्या का जीवन व्यतीत करते हैं। दुखियों की सेवा, निराश्रयों को आश्रय देना, और दिन रात देश-

अब मेरा चित्त मुरादाबाद से उठ गया। ७–८ दिन किसी प्रकार मैं ने काटे। पट्टी खोलने के बाद मैं ने देहरादून जाने का निश्चय किया और अठारह जौलाई को डाक्टर त्रिवेदी जी की आज्ञा लेकर देहरादून को रवाना हुआ। देहरादून का यह ऋतु बड़ा सोहावना होता है। दो महीने यहां मेरे बड़े आनन्द से कटे। धीरे धीरे आँख का जखम अच्छा होने लगा और सितम्बर तक आंखमें इतनी रोशनी आगई कि मैं निकट की चीजें देखने लगा। सितम्बर के दूसरे सप्ताह में मैं ने देहरादून छोड़ दिया और अपना प्रचारकार्य फिर आरम्भ किया। १० मार्च को जो ओपरेशन मोगा में कराया था उससे इतने बखेड़ों और झगड़ों के बाद अब जाकर निपटारा हुआ। आंखकी पट्टी उतर गई और मैं कुछ काम करने योग्य बना। आंख का अमूल्य पानी(Vitrious) बहुत दर्जे तक निकल गया। थोड़ी सी रोशनी जो बची उसके लिये मैं ने ईश्वर को धन्यवाद दिया।

पाठक, दाहिनी आंख की ओपरेशन की बात तो आप सुन चुके। आइये अब मैं आपको बर्लिन ले चलूं। मेरी बांई आँख का इलाज बर्लिन में होगा।



द्वितीय खण्ड

आठवां अध्याय

पासपोर्ट का झगड़ा

सन् १९२२ के फ़रवरी महीने में मैं प्रचारार्थ बम्बई पहुंचा। अभी तक मेरे हृदय में जर्मनी जाने का कोई ख्याल नहीं था। एक दिन मैं एक पारसी सज्जन डाक्टर सम्भाता जी से बातें कर रहा था। बातों बातों में ही उन्होंने मुझे जर्मनी के आँखों के प्रसिद्ध डाक्टरों की कुछ बातें बतलाई। उनकी बात मेरे मन को लग गई और मैं ने निश्चय किया कि बाईं आँख का इलाज जर्मनी जाकर करवाना चाहिए।

निश्चय होते ही साधनों की फ़िकर पड़ी। इरादा करके उसको पूरा करने की धुन मुझ में बचपन से ही है। ईश्वर भी मेरे ऊपर सदा दयालु रहते हैं, वे ठीक अवसर पर सहायक भी भेज देते हैं। बम्बई के प्रसिद्ध देशभक्त भाई बरजोरजी फ़्रामजी भरुचा से मेरा परिचय होगया। परिचय होने के बाद आपस का प्रेम बढ़ने में कुछ देर न लगी। भरुचा जी निर्दोष चरित्र के मनुष्य हैं। उनका स्वार्थ त्याग, उनकी सरलता, उनका अदम्य उत्साह सचमुच अनुकरणीय है। आप बालब्रह्मचारी हैं और ब्रह्मचारियों की तरह कठिन तपस्या का जीवन व्यतीत करते हैं। दुखियों की सेवा, निराश्रयों को आश्रय देना, और दिन रात देश-

हित चिन्तन करना ही उनकी जीवनचर्य्या है। आप नेकी का जो काम दाहिने हाथ से करते हैं, बायां हाथ उसको नहीं जानता। स्वयम् पीछे रहकर वे दूसरों को आगे करते हैं और सेवाधर्म को मुख्य मानकर तल्लीन रहते हैं।

ऐसे भक्त भरुचा से मेरा प्रेम होगया और उन्होंने मेरे दुख को अपना दुख मान मेरा हाथ बटाने का वचन दिया। पहिलीबात पासपोर्ट की थी, उसके लिये अर्ज़ी दी गई। गवर्नमेण्ट ने जर्मनी का पासपोर्ट देने से इन्कार कर दिया। इंगलैंड का पासपोर्ट देने पर बम्बई की सरकार राज़ी थी लेकिन मुझे तो इंगलैंड जाना नहीं था। आंखों के डाक्टर जर्मनी में रहते हैं, फिर भला मैं इंगलैंड जाकर क्या करता। बम्बई सरकार और मेरे बीच में पासपोर्ट के सम्बन्ध में जो पत्र व्यवहार हुआ, पाठकों के विनोदार्थ उसको यहाँ देता हूं।

THE CORRESPONDENCE

Bombay, 28—4—23

To the Passport Officer, Bombay,

Sir,—With reference to the interview I had with your goodself to-day, may I say that I am recommended by my medical advisers to consult expert opthalmic surgeons of Austria and Germany like, Dr Paggenstecher and Dr Fucks, who are renowned opthalmists all the world over, and hence my doctor's recommendation, as will be seen from the accompanying medical certificate I, therefore, need a passport for Germany and Austria in the first instance. Secondly, I have applied for passport

for France Switzerland and England so that I can go to any health resort after the medical treatment in Austria and Germany.—Yours, etc.,

(Sd) SATYA DEVA.

MEDICAL CERTIFICATE

D R. Sirdesai,
L. R. C. P & S
Surgeon Oculist

Eye Hospital,
Sandhurst Road,
Girgaon, Bombay,
13—4—22

I have examined Swami Satya Deva and find that he suffers from Cataracts, one of which has been removed not very satisfactorily He needs proper treatment for his eyes under the care of the best possible Opthalmic Surgeons such as those of the European Countries

(Sd) D S SIRDESAI

No P S 488.
Passport. Office.
Secretriat Mayo Road
Bombay, 6th May 1922.

From
J A Arratoon Esq,
Passport Office to the Government of Bombay

To
Swami Satya Deva,
Purshotam Building
Girgaum Tram Terminus,

Sir,—In reply to your letter dated the 28th April, 1922, I have the honour to inform you that the Govern

ment regret that they cannot alter their decision to grant you the passport for any other European Country, but England

I am to add that there are several good ophthalmic surgeons and health resorts in England

Your Passport will be forwarded to you on receipt of Rs 3 which is the fee for a passport

I have the honour to be,

Sir,

Your most obedient servant,

(Sd) J. A ARRATOON,

Passport Officer,

to the Government of Bombay.

Purshotam Building,

Girgaum Tram Terminus,

Bombay, 8th May, 1922.

To.

J A Arratoon, Esq.,

Passport Officer to the Government of Bomboy

Sir,

I am in receipt of your letter No P O 438, dated the 6th instant You do not state any reason, why your Government insists on giving me passport for England, when I want it specifically and principally for Germany and Austria Does your Government contend, that in England there are as good Ophthalmic surgeons as Dr Paggenstecher and Dr Fucks of Germany and Austria ?

Do not English patients go over to Austria and Germany for eye treatment? Why do they journey to the continent if equally able opthalmists are available in England? Can the Government give names and addresses of the English ophthalmists with as wide world reputation as the celebrated Drs. Fuoke and Paggenstecher enjoy?

Let me make the position clear to the Government that they are greatly responsible for the present state of my eyes, as I will indicate here. In March, 1921 my right eye was operated at Moga, and I proceeded to Almorah for complete rest, so that the wounds might be healed up and my sight restored The day I reached Almorah—in April, 1921—the very day the English Magistrate served me with a notice under Section 144: My eye was still bandaged; I was not physically fit to deliver any lecture, and I was unnecessarily provoked and agitated just when I needed absolute rest After 24 days when the public protest grew in volume the Magistrate realised his mistake and withdrew the order

From Almorah I went to Farrukhabad in May last, just to consult the Doctors and see my friends as well But here too I was served at the station with an order under Section 144 from another District Magistrate I waited for a few days within which period the Magistrate could see his mistake, but the Police was obstinate For self-respect, I had to disobey the unjust order There was great agitation I was tried and sentenced to six hours sitting in the Court.

To Swami Satyadeva
Parshotum Building,
Girgaum Tram Terminus

With reference to the correspondence ending with your letter dated the 26th May, 1922, regarding the endorsement of your passport for certain countries on the continent, I am directed by the Governor in Council to state that Government have nothing to add to their previous communication

The passport issued in your favour for the journey to England will be forwarded to you on receipt of the fee of Rs 3

Sir, I have the honour to be,
Your most obedient servant,
(Sd) J A ARRATOON,
Passport Officer to the Govt of Bombay

बम्बई के प्रसिद्ध नागरिक श्रीयुत लक्ष्मीदास राव जी तेरसी और भाई भरुचा जी ने यह पत्र व्यवहार अपने शहर के राष्ट्रीय अंग्रेजी दैनिक समाचार पत्र बम्बई क्रानीकल में छपने के लिये भेजा। भारत के सभी भाषाओं के समाचार पत्रों में यह पत्र-व्यवहार उद्धृत हुआ। थोड़े में इसका आशय यह है कि बम्बई-सरकार मुझे इगलैंड का पासपोर्ट देना चाहती थी लेकिन जर्मनी का नहीं। मेरे बार बार पूछने परभी उसने अपनी इन्कारी का कारण नहीं बतलाया और यही कह दिया कि इगलैंड के किसी

आर्यों के डॉक्टर से इलाज करवाइये। यह झगड़ा तीन चार महीने तक चलता रहा। अन्त को मैंने इंगलैंड का पासपोर्ट ही स्वीकार कर लिया, क्योंकि मुझे खबर मिली थी कि इंगलैंड जाकर जर्मनी जाने की आज्ञा प्राप्त करना कुछ भी कठिन नहीं है परन्तु भावी दूर खड़ी हंस रही थी और कहती थी—

"तुमको इंगलैंड जाना ही नहीं पड़ेगा। इसी पासपोर्ट से बिना किसी रुकावट सारा योरुप घूम सकोगे। जर्मनी बेचारे की तो बात ही क्या है।"

नवां अध्याय

बम्बई से पेरिस

सन् १९२३ का अप्रैल महीना आगया। योरुप यात्रा की तय्यारियां होने लगीं। लाइड ट्रीस्टीना के 'पिल्सना' जहाज़ में मैंने अपना नाम रजिस्टर करा दिया। यह स्टीमर बम्बई से मई की पहिली तारीख को इटली के प्रसिद्ध शहर वेनिस को जाने वाला था। अप्रैल का सारा महीना यात्रा की तय्यारीमें बीता। एक सूट-कोट पतलून तय्यार करवाया। स्वदेशी क़मीज़ें, पायजामें, खद्दर के रूमाल और कालर बनवाये। बिल्कुल सादा सामान लेने पर भी दो सौ रुपये के क़रीब खर्च हुआ। मित्र प्रेमियों ने कई आवश्यक चीज़ें भेंट कीं। धन से सहायता करने वालों ने मेरी धन से सहायता की। जो मैंने कहा सो पूरा किया। भाई लक्ष्मीदास

प्रोफ़ेसर हैं। इनके साथ मेरी खूब बातें होती थीं। प्रोफ़ेसर निक्सन भगवान बुद्ध के अनन्य भक्त हैं। आप संस्कृत और पाली पढ़ रहे हैं। प्राय धार्मिक विषयों पर आपसे वार्तालाप होता था। दूसरे थे—उसी यूनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर बाकर। इन्होंने अपनी नौकरी से त्यागपत्र देकर पत्नी सहित स्काटलैण्ड को प्रस्थान किया था। वहाँ अपनी ही जन्मभूमि में उन्हें एक स्कूल की हेडमास्टरी मिल गई थी। यह दोनों स्त्री पुरुष बड़े अच्छे स्वभाव के थे। मेरी इनके साथ अच्छी कटी।

\+ × × ×

अरब का सागर तथा लालसागर दोनों निकल गये। स्वेज की नहर से भी जहाज पार हो गया। एशिया पीछे छूटा और हमने योरुप में प्रवेश किया, लोगों ने गरम कपड़े पहने और भूमध्य सागर की शीतल सुहावनी समीर का आनन्द लेने लगे। जहाज अपनी मस्ताना चाल से उत्तर की ओर जा रहा था। शान्त समुद्र में यात्रा का आनन्द कुछ विचित्र ही होता है। अपने अनुकूल ऋतु, खाने को भरपूर, चिन्ताओं से मुक्त-मन— ये बातें मन में अद्भुत आह्लाद पैदा करती हैं। मेरे कैबिन के मि० सेन से मेरा बहुत अच्छा परिचय हो गया था। राज्य कर्मचारी होने के कारण पहले तो आप मुझ से डरते रहे परन्तु बाद में अधिक परिचय होने के कारण वे मेरे साथ बराबर वार्तालाप करते थे। अब चूंकि मैंने अपने लम्बे बाल कटवा दिये थे और योरुपीन पोशाक पहिन ली थी इस कारण दूसरे ऐंगलो इंडियन यात्री भी

मेरे साथ अच्छा व्यवहार करने लगे। पहिले दर्जे के दो तीन मुसलमान यात्री हम लोगों से प्रेमालाप करने के लिये आ जाया करते थे। इस प्रकार पिछला सप्ताह सुखपूर्वक कटा और हम लोग ट्रीस्ट बन्दरगाह पर पहुंच गये।

यहां पर दो चार उपयोगी बातें भारत से आने वाले यात्रियों की सुविधा के लिये लिखता हूँ। भारत से योरुप जाने वाले यात्री के पास खाकी जीन का निकरनुमा सूट जरूर चाहिये। यह जहाज पर हर समय पहिनने के लिये बड़ा उपयोगी होता है। एकपूनी ठण्डा सूट अपनेपास अवश्य होना चाहिये जो कभीकभी पहिनने के काम में आवे। बम्बई से पोर्ट सय्यद तक ठंडे सूट के बिना काम नहीं चल सकता। जब यात्री भूमध्य सागर में पहुंचे तब उसे गरम सूट पहिन लेना उचित है। गर्मी की ऋतु में यात्री को आराम कुर्सी की बड़ी जरूरत रहती है। यह कुर्सियां यात्रियों को जहाज में किराये पर मिल सकती हैं। इनका किराया पूरी यात्रा तक ९ शिलिंग पड़ता है। वैष्णवी भोजन करने वाले को भोजन प्रबन्धक के साथ समझौता कर लेना चाहिए। पांच चार रुपया भेंट करने से निरामिष भोजन मिलने लगता है। यदि कोई भारतीय यात्री दूसरे दर्जे का खर्च करना न चाहे तो उसे डेक का टिकट (भोजन बिना) खरीद लेना चाहिए और अपना इकनमिक कुकर अपने साथ रखना उचित है। डेक पर अपनी इच्छानुसार वह भोजन बना सकता है। पाखाने का उसे कष्ट रहेगा। उसके लिये वह चीफ स्टुअर्ड (Chief Steward) को एक पौण्ड

गोल मेजें पड़ी हुई थीं जिनके इर्द गिर्द लोग कुर्सियों पर बैठे धूप का आनन्द लेते थे। योरुप में इस वर्ष असाधारण शीत था। मई के महीने में अधिक वर्षा हो जाने के कारण भारत के दिसम्बर जनवरी महीनों जैसी सर्दी यहां पड़ रही थी। रात के समय इस नगर का दृश्य बड़ा अद्भुत होता है। भिन्न भिन्न देशों के सैलानी अपनी अपनी प्रियाओं के साथ काफ़ीहाउसों के बाहर और भीतर जगमगाती रोशनी में बैठे हुए इच्छानुकूल रसपान करते हैं। चूंकि आजकल इटली का सिक्का सस्ता था और एक पौण्ड के पचानवे लीरे (Lire इटली का सिक्का) मिलते थे इस लिए अमरीका और इंगलिस्तान के लोगों के लिये यहाँ बड़ी मौज थी। वे मनमानी चीजें लेते थे। दूध वाले को दूध, क़हवा के शौकीन को क़हवा, चाय के प्यारे को चाय, और चोकोलेट के अभिलाषी को गर्म प्याला चोकोलेट का मिलता है। लोग घटों अपनी अपनी जगहों पर बैठे मोहनी युवतियों को देखते रहते हैं। संगीत का आलाप भी समय समय पर इनके मन को मुदित करता है। थियेटर और सिनेमा दर्शकों से भर रहते हैं। जहां लक्ष्मी महारानी अपने नये नये नृत्य दिखाती है। वेनिस में अमरीकन यात्रियों की भरमार थी। सब जगह उनकी तूती बोलती थी। क्यों न हो वे सारे संसार में अधिक धनवान है। ग्रेन्ड होटल में मैं दो दिन रहा। कमरे का किराया सवा तीन रुपये फ़ी रात के हिसाब से देना पड़ा, और भोजन आदि का खर्च अलग। १९ मई को सब ठीक ठाक कर मैंने पेरिस जाने की तैयारी की और

मध्याह्नपाद की गाड़ी से पेरिस को जाना हुआ । प्रोफ़ेसर निक्सन और मि० थाकर लंदन जा रहे थे इस लिये पेरिस तक उनका मेरा साथ हो गया ।

वेनिस से पेरिस जाने का मुख्य रास्ता स्विटज़रलैण्ड होकर है । रात को ८–९ बजे इटली की सीमा पर गाड़ी पहुंची और यात्रियों की फिर तलाशी हुई । मेरा सामान मेरे कमरे में ही था और उसमें मैं और निक्सन दो ही मुसाफ़िर थे । हमारी परीक्षा केवल पासपोर्टों की हुई और जब इटली पार हुए तो स्विटज़र-लैण्ड के अधिकारी पासपोर्ट देखने आये । सवेरे फ्रान्स में प्रवेश करते समय फ्रान्स के पासपोर्ट परीक्षकों ने वही खेल किया और ९–१० बजे गाड़ी जगत् विख्यात पैरिस नगर में जा पहुंची ।



दसवा अध्याय

मैं जर्मनी कैसे पहुंचा ।

पेरिस तो मैं पहुंच गया, अब जर्मनी आने का प्रश्न सामने था । बम्बई से चलते समय मैंने इटली और फ्रान्स के कौन्सिलों से विजा "Visa" अर्थात् उनके देश घूमने की आज्ञा ले ली थी । जर्मनी जाने के विषय में मेरा निश्चय यह था कि लंदन जाकर जर्मनी प्रवेश की आज्ञा अंग्रेज़ी सरकार से ले लूंगा । इसी कारण मैंने बम्बई से लंदन तक का सीधा टिकट लिया था ।

पेरिस पहुंच कर मैंने अपने मित्र प्रेमियों से सलाह ली तो मालूम हुआ कि वीसबाडेन जाने के लिये किसी प्रकार की आज्ञा की आवश्यकता नहीं। मेरे पास चूंकि फ्रान्च कौन्सिल की आज्ञा थी, और वीसबाडेन इस समय फ्रान्स के अधिकार में था, इसलिए वहां जाने के हेतु किसी जर्मन आज्ञा की आवश्यकता न थी। जब मैं जर्मन कौन्सिल के पास पूछने के लिए गया तो उसने भी मुझे यही बात कही, "यदि आप बर्लिन जाना चाहते हैं तो अवश्य जर्मन विसा ले लीजिये, वीसबाडेन जाने के लिए फ्रान्स के कौन्सिल की आज्ञा काफी है।" मैंने मन में सोचा कि लगे, हाथ जर्मनी की आज्ञा ले लेनी चाहिए और नौ रुपये देकर अपने पासपोर्ट पर जर्मनी की मोहर करवाली। अब मैं बिना, किसी रोक टोक के जर्मनी जा सकता था। जिस बात के लिये, बम्बई सरकार से व्यर्थ का इतना झगड़ा हुआ, जिसके लिये बम्बई कौन्सिल में प्रश्न पूछे गये, और जिसके कारण मेरा एक वर्ष ऐसे ही बीत गया, वह आज्ञा पेरिस में मुझे सहज में ही प्राप्त हो गई और मुझे लंदन भी न जाना पड़ा।

अब वीसबाडेन जाने की चिन्ता लगी। मैं अपने साथ एक भारतीयबन्धु को ले जाना चाहता था। फ्रेन्च और जर्मन भाषाओं का ज्ञान न होने के कारण मैं बिलकुल पराधीन था।

मुझे अकेले यात्रा करने के अयोग्य देख सेठ अम्बालाल मेहता (ईश्वर उनका भला करे) ने अपना एक आदमी मुझे वीसबाडेन के अस्पताल तक पहुंचाने के लिये तय्यार किया।

सेठ मेहता'जी पेरिस में मोतियों का धन्धा करते हैं और यहां की भारतीय मर्चेन्ट ऐसोसियेशन के मन्त्री हैं। आप बड़े दयालु स्वभाव के हैं और समय समय पर निराश्रय भारतीय छात्रों की बराबर सहायता करते रहते हैं। उन्हीं की हिम्मत से मेरा बीसबाडेन आना सहज हो गया।

यहा पर पेरिस प्रवासी भारतीयों के विषय में कुछ लिखना अनुचित न होगा। फ्रान्स की राजधानी में साठ सत्तर के करीब भारतीय व्यापारी हैं। ये प्रायः मोतियों का व्यापार करते हैं। दो चार को छोड़ कर शेष सभी गुजरात—काठियावाड़ के रहने वाले हैं। भारत के सभी प्रान्तों से गुजरातियों में शालीनता अधिक है। वैष्णव धर्म ने इनमें बड़े अच्छे सद्‌गुण भरे हैं। दया का भाव, धर्म की निष्ठा और शील इनमें स्वाभाविक है। कई व्यापारी अपने घर गृहस्थी के साथ यहां रहते हैं। अपने धन्धे में ये लोग बड़े चतुर हैं। फ्रांस में रंग का पक्षपात बिलकुल नहीं है। इस कारण इन भारतीय व्यापारियोंको यहां पूरे अधिकार प्राप्त हैं। लाखों रुपये का व्यापार इनके हाथ में है। इनके दफ्तर ज्यादातर रू लाफायट (Rue lafayett) में हैं। इस गली के ५६ नम्बर के मकान में मि० राना के पास आने से सब का पता मिल जाता है। यदि मि०राना वहाँ पर न हों तो ५४ नम्बरके मकान में सेठ भवनार के पास आने से सब भारतीयों का परिचय मिल सकता है। इसी गली के आस पास की गलियों में मँहगे और सस्ते किराये के कमरे आसानी से मिल जाते हैं। रूलाफायट गली के

५४ नम्बर के मकान के सामने एक बड़ा प्रसिद्ध काफी हाउस है। इसमें दुनिया भरके मोतियों के व्यापारी आते हैं और यहीं पर सुबह शाम भारतीय व्यापारी बराबर जमा होते हैं। पेरिस जाने वाले भारतीयों को यदि अपने इन बन्धुओं के दर्शन की इच्छा हो और हिन्दुस्तानी भोजन की लालसा हो तो वे इस रूलाफायट में आकर ठहर सकते हैं। कई भारतीय व्यापारी नगर के बाहर इर्द गिर्द के ग्रामों में रहते हैं। कुछ भारतीयों ने यहा अपने निज के मकान भी ले लिए हैं। मेरे साथ इन सब भाइयों ने बड़ा अच्छा बर्ताव किया। भाई महादेव देसाई, सेठ सरकार, सेठ हीरालाल बैंकर आदि सभी सज्जनों का मैं बड़ा अनुग्रहीत हूं। सब ने मेरे साथ प्रेम व्यवहार किया और मेरी यथा योग्य सहायता की, सेठ अम्बालाल जी मेहता ने जब यह देखा कि मैं अकेले वीसबाडेन नहीं जा सकूंगा तो उन्होंने भाई अजीतराय जानी जी को मेरे साथ कर दिया और मुझ बीमार की अत्यन्त सहायता की।

दस ग्यारह दिन पेरिस रहने के बाद मैंने वीसबाडेन जाने की तय्यारी की। यहा इन दिनों भी जाड़ा खूब था इस लिये मैंने दो चार जरूरी गर्म कपड़े और खरीद लिये। सब कुछ ठीक ठाक कर मैं भाई अजीतराय के साथ वीसबाडेन रवाना हुआ। पेरिस से वीसबाडेन सोलह सतरह घंटे का रास्ता है। गाड़ी उत्तर की ओर जा रही थी। योरुप के पिछले भयंकर युद्ध में फ्रांस का यही उत्तरी हिस्सा जर्मनों द्वारा बर्बाद हुआ था। अन्धेरी रात होने के कारण मैं कुछ भी न देख सका। सबेरे फ्रांस की

हद पर फिर पासपोर्टोंकी परीक्षा हुई और इसके बाद हमने जर्मन राष्ट्र में प्रवेश किया। दो फ्रांसीसी नवयुवक हमारे साथ वीसबाडेन जा रहे थे। उन्होंने बड़े अभिमान से मुझ से कहा कि फ्रॅंस की सीमा राहिन नदी को पार कर वीसबाडेन तक चली गई है। जो जर्मन मुसाफ़िर गाड़ी के डिब्बों में आते थे उनके चेहरों पर उदासी छाई हुई थी। आखिर जर्मनों की अत्यन्त प्यारी राहिन नदी पार कर गाड़ीमध्याह्न के समय वीसबाडेन जा पहुंची। वहां पर फ्रॅंच सिक्का नहीं चलता, इस लिये मुझे मार्कों की ज़रूरत पड़ी। स्टेशन पर दर्याफ़्त करने से मालूम हुआ कि मार्क पौण्ड के पौने दो लाख मिलते हैं।

सूरज की खिलखिलाती धूप में मैंने वीसबाडेन नगरमें प्रवेश किया। यहीं आने के लिये मैंने भारतीय सरकार से इतनी लिखा पढ़ी की थी और आज मई के अन्तिम दिन मैं बिना किसी रोक टोक के यहां पहुंच गया।

——

ग्यारहवां अध्याय

वीसबाडेन नगर में एक मास

प्रशिया, जर्मन राष्ट्र की, सब से बड़ी रियासत है। इसी रियासत के हेसीनासू प्रदेश के अन्तर्गत वीसबाडेन नाम का एक मुख्य शहर है। टौन्स पर्वत के दक्षिण पश्चिम तथा जर्मनों की प्यारी राहिन नदी से तीन चार मील की दूरी पर यह सुन्दर

नगर बसा है। वह दूरी भी क्या है, आजकल के वैज्ञानिक युग की परिभाषा में वीसबाडेन को राइन नदी के किनारे पर ही बसा हुआ कहना चाहिए, क्योंकि बिजली की गाड़ियाँ नगर से नदी के उस पार तक दिन रात दौड़ती रहती हैं और रास्ते में बराबर कोठियाँ और बंगले बने हुए हैं। टौन्स पर्वत के दक्षिण पश्चिम की ओर जो ढलवान भूमि है उसी की छोटी किन्तु उपजाऊ घाटी में यह नगर अगूठी में नग की तरह जड़ा हुआ दिखाई देता है। मेन नदी इसके दक्षिण में पाँच मील के फ़ासले पर बहती है। इस नगर की आबादी डेढ़ लाख के क़रीब होगी। सारे योरुप में यह नगर अपने नीरोग जलवायु के लिये प्रसिद्ध है। साठ हजार से अधिक यात्री हर साल यहां के होटलों, निवास गृहों, बंगलों स्नानागारों, उद्यानों और काफी हाऊसों का आनन्द लेने के लिये आते हैं। बड़े सघन पहाड़ी जंगल इसकी शोभा बढ़ाते हैं। अच्छी बड़ी सड़कें जंगलों के बीच में से होती हुई नगर को जाती हैं। नागरिक और सैलानी यात्री दोपहर और सायंकाल इन जंगलों में घूमते दिखाई देते हैं। बाग़ बगीचे और पार्कों का तो कहना ही क्या, यह नगर मानों अपने ढंग का एक अनूठा उद्यान है, जहां जर्मन नर-नारी गृहस्थ के अन्दर रहते हुए भी वानप्रस्थियों का मज़ा लेते हैं। गंधक मिश्रित जल के कई चश्मे यहां पर हैं। धन-लोलुप व्यापारी इनसे बड़ा लाभ उठाते हैं। दूर २ देशों के बीमार लोग अपनी तन्दुरुस्ती ठीक करने के लिए यहां आते हैं और इन चश्मों के जल में स्नान कर आरोग्यता लाभ करते हैं।

शहर में बिजली की गाड़ियां चलती हैं जिन पर बैठ कर लोग इर्द गिर्द के ग्रामों में घूमने जाते हैं। कई सड़कें तो ऐसी हैं जिनके पार्श्व-पथ दोनों ओर के वृक्षों की सघन छाया से ढके रहते हैं। सीमेंटदार इन पार्श्व-पथों पर बराबर बेंचें लगी रहती हैं जहाँ आनन्दी लोग बैठे हवा खाया करते हैं।

जून का महीना जर्मन ऋतु के योवन का महीना है। इस वर्ष अधिक वर्षा के कारण अभी गर्मी आरम्भ नहीं हुई थी। जब मैं वीसवाडेन पहुँचा तो विचित्र दृश्य देखने में आया। सड़कों पर उदासीनता छाई हुई थी। मोटर बहुत कम दिखाई देते थे। घोड़े गाड़ियां इधर उधर दौड़ रही थीं, सो भी बहुत कम। फ्रांसीसी सिपाही सड़कों और गलियों में घूम रहे थे। उनकी हबशी फौज का एक दस्ता नगर में गश्त करता हुआ दिखाई दिया। देशहितैषी जर्मनों के हृदयों में मानो छुरियां चल रही थीं, पर वे ठण्डी आहें भर कर रह जाते थे। जिस होटल में हम लोग भोजन करने के लिये गये वहां बड़ी मुश्किल से हमें खाने को मिला, मानों खाने की सब चीजें खतम होगई थीं। बहुत आग्रह करने पर भी दूध नहीं मिला। गुलामी को एक स्वतन्त्र जाति किस घृणा की दृष्टि से देखती है, इस का ज्वलन्त फोटो यहां देखने में आया। कोई जर्मन सिपाही फ्रान्सीसियों की नौकरी में न था। अगर कोई ऐसा करता तो जर्मन लोग उसे जीता जला देते। वीसवाडेन से उधर पूरब आने वाली गाड़ियां फ्रेंच सरकार के हाथ में थीं, जिनका जर्मन लोगों ने बहिष्कार किया हुआ था।

होटलों में बहुत थोड़े विदेशी थे। मिश्र के डर के मारे दूसरे देशों के सैलानी लोग इधर आना पसन्द नहीं करते थे। योरुप के महायुद्ध के पहिले गर्मी के महीनों में वीसबाडेन के होटल मुसाफ़िरों से भरे रहते थे। होटल वाले लाखों के वारे न्यारे करते थे लेकिन आज उनको अपना ख़र्च निकालना भी मुश्किल था। फ़्रान्सीसी सरकार नहीं चाहती थी कि बाहर के लोग वीसबाडेन में आवें और मुफ़्त की "शरारत" करें, इस कारण यहां का व्यापार बहुत ढीला होगया था। काम न मिलने के कारण गृहस्थों का खाने का ठिकाना न था। जिनके घर दरी, क़ालीन और क़ीमती सामान से सजे हुए थे उनको आज रोटी का भयङ्कर प्रश्न सता रहा था। ऐसी दशा होने पर भी वीसबाडेन के नागरिकों को मैं ने आशावादी ही पाया। खेल, तमाशों और सिनेमाओं में जाने वाले लोगों की संख्या काफ़ी थी। पहाड़ी के नीचे के बग़ीचे में युवक और युवतियां गीत गाती हुई दिखाई दीं। भला क्या कोई बारह महीने दुखी रह सकता है ?

बम्बई में मैं ने इस शहर के रहने वाले डाक्टर पेगनस्टीचर की बड़ी प्रशंसा सुनी थी। सुना था कि वे आंखों के असाध्य रोगों की चिकित्सा करते हैं। उसी प्रसिद्धि से आकर्षित होकर मैं यहां आया था। जिस दिन मैं यहां आकर पहुंचा उसी दिन मैं ने डाक्टर महोदय के अस्पताल की तलाश की और वहां जाकर उसमें भर्ती हो गया। जिस जर्मन डाक्टर पेगनस्टीचर का नाम सारे योरुप और अमरीका में विख्यात है उसे मरे

बहुत वर्ष हो गये। उसी के वंश में एक और डाक्टर पेगनस्टीचर है जो इस समय बुढ़ापे के कारण रोगियों की आंखों का इलाज करने में असमर्थ है। जब कोई धनवान रोगी आता है तो वह केवल उसकी आंखों की परीक्षा कर उसे सलाह मशवरा दे देता है। इसी वृद्ध डाक्टर का लड़का डाक्टर पेगनस्टीचर जूनियर है, जिसकी अवस्था ४० वर्ष से अधिक होगी, वह अपने बाप के बनवाये हुए क्लिनिक (सेनिटोरियम) का अध्यक्ष है और स्वतन्त्रतापूर्वक आंखों का इलाज करता है। बूढ़े पेगनस्टीचर के पास जब कोई बीमार आता है तो वह उस बूढ़े डाक्टर का ही रोगी समझा जाता है, उस बीमार का उसके लड़के से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। बाप और बेटे की फीस अलग अलग है। जो लोग आग्रहपूर्वक बूढ़े से ही इलाज कराना चाहते हैं वह बुड्ढा उनका इलाज भी कर देता है। प्रायः लोगों को बाप बेटे के इस अलग अलग धन्धे का कुछ भी हाल मालूम नहीं होता, वे केवल स्वर्गवासी पेगनस्टीचर का नाम सुन कर यहां चले आते हैं और इस जवान पेगनस्टीचर से अपना इलाज करवाते हैं।

जिस वक्त मैं वहां जाकर पहुंचा और मुझे मेरा कमरा दिखलाया गया तो मुझे वहां बड़ा सुनसान मालूम हुआ। बाद में पता लगा कि इन दिनों क्लिनिक में बहुत कम रोगी हैं। यहां का वातावरण मुझे अच्छा न लगा। डाक्टर से लेकर छोटे नौकर तक सब लोभ के वशीभूत हो रहे थे। उस समय तो मुझे

यहा की दशा देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ, परन्तु बाद में जब मैं ५–६ महीने तक बर्लिन में रहा तो मुझे पता लगा कि सारे जर्मनी का वातावरण बिगड़ा हुआ है। जैसे कुत्ता हड्डी को देखता है ऐसे ही जर्मनों को मैं ने पैसे का गुलाम पाया। डाक्टर पेगनस्टीचर का क्लिनिक बड़ी अच्छी जगह स्थित है। यहां शुद्ध पवन मिलता है। मकान भव्य बना है और उसमें सब वैज्ञानिक सुख हैं। धनी, मांस खाने वाले रोगी, के लिये तो यह स्थान बड़ा रम्य है। इसके निकट ही टौनस पहाड़ी जगल है, जहां सुबह शाम घूमने से ही मनुष्य तन्दुरुस्त हो जाता है। पास ही ५–७ मिनट के फ़ासले पर बड़ा अच्छापार्क है, जहां घूमने और सैर करने से मन बड़ा प्रफुल्लित होता है। कहते हैं कि क़ैसर विलियम वीसबाडेन की प्राकृतिक शोभा का आनन्द लेने के लिये हर साल यहा आया करते थे। कहने का तात्पर्य यह है कि यहा आने वाले ७५ फ़ी सदी बीमार तो केवल यहां की जल-वायु से ही अच्छे हो जाते हैं। प्रकृति के इस अद्भुत दान का लाभ उठा कर साधारण डाक्टर भी प्रसिद्ध हो जाते हैं। इस लिये मेरी सम्मति यह है कि बीमार आदमी यहां आकर कोई कमरा किराये पर ले ले और वहीं घर की मालिकिन से भोजन का प्रबन्ध करले। नित्यप्रति पाच सात मील घूमने, पार्कों और जगलों की नीरोग हवा खाने तथा गन्धक मिश्रित चश्मों का पानी पीने से आदमी भला चंगा होजाता है।

मैं इस क्लिनिक में तीन सप्ताह तक रहा। मुझे चूंकि पेगन

स्टीवर्ग का भेद मालूम नहीं था इस कारण मैं छोटे डाक्टर पेगनस्टीचर के पास जाकर फंस गया। तीन हफ़्ते तक तो खाली मालिशें और वाष्प-स्नान ही होते रहे, मगर मुझे उनसे कुछ विशेष लाभ नहीं हुआ। जब मैं बाहर घूमने जाता तो मेरी दाहिनी आंख भी कुछ कुछ पढ़ने लगती थी। इससे मुझे ऐसा संस्कार हो गया कि शुद्ध वायु में प्रातःकाल घूमने से आंखों को विशेष लाभ होता है। मैं ने डाक्टरजी से इस बात का ज़िकर किया कि वे मुझे केवल जंगलों और पार्कों में घूमने की आज्ञा दे दें, मैं किसी भी प्रकार की मालिश आदि नहीं कराना चाहता। डाक्टर जी इससे सहमत न हुए तब मैं ने वहां से बर्लिन जाने का विचार किया।

पाठक, एक दिन मैं अपने एक प्रेमी जर्मन मित्र के साथ राइन नदी की सैर करने के लिये गया था। जर्मनों की उस प्यारी राइन नदी के सुन्दर शीतल किनारे पर बैठ कर मैं ने उस की शोभा देखी थी। जर्मनों की इस भागीरथी के अनुपम दृश्यों का आनन्द मैं आपको देना चाहता हूं। जो मज़ा मुझे इस नदी के नैसर्गिक दृश्य देखने से मिला, भला मैं उसका भागीदार आपको बनाये बिना बर्लिन कैसे जा सकता हूं। इस लिये आइये मैं आपको योरुप की इस प्रसिद्ध नदी की सैर कराऊं।



बारहवां अध्याय

राइन

भारतवर्ष के लोग अपनी प्यारी गंगा महारानी को "मातगंगे!" कह कर सम्बोधन करते हैं। वे कहीं भी चले जाय लेकिन अपने प्यारे देश की इस पुनीत नदी को कभी नहीं भूलते। ठीक यही दशा जर्मनों की राइन नदी के सम्बन्ध में है। वे राइन नदी को "फादर राइन" कह कर पुकारते हैं और उसके प्रति उनका ऐसा ही प्रेम है जैसा कि हिन्दुओं का श्री गंगा जी के साथ। भारत वासियों का तो यह सौभाग्य है कि उनकी मोक्षदायिनी जान्ह्वी का बालकपन, यौवन और बुढ़ापा उन्हीं के देश में पूरा होता है और वे उसकी जीवन यात्रा का पूरा आनन्द लाभ करते हैं, परन्तु जर्मनों की प्यारी राइन नदी स्विटजरलैण्ड से निकलती है, जर्मनी में बहती है, और अन्त में हालैण्ड से होती हुई समुद्र में जाकर मिल जाती है। भारत वर्ष में लाखों स्त्री और पुरुष होंगे जिन्हों ने श्रीगंगा जी के निकास-स्थान गंगोत्री की यात्रा की होगी, यदि उन्होंने गोमुख के दर्शन न किये होंगे तो कम से कम श्रीबद्रीनारायण यात्रा में श्री भागीरथी जी के जो अलौकिक दृश्य हैं उनकी छटा अवश्य ही देखी होगी। ऐसे लोगों के लिए प्रसिद्ध राइन नदी की जीवन यात्रा का वर्णन बड़ा आनन्ददायक होगा, इसी लिए मैंने कुछ परिश्रम से, अपने प्रेमी पाठकों के लाभार्थ इस वर्णन को लिखा है।

राइन, योरुप की एक प्रसिद्ध नदी है और जर्मन निवासियों की तो इसे अधिष्ठात्री देवी ही कहना चाहिए जर्मन भाषा के उद्भट कवि और लेखकों ने अपनी इस देवी की महिमा का बखान बड़े सुन्दर और भावपूर्ण शब्दों में किया है। यह नदी स्विटज़रलैंड के ग्रिमन्स नामी (Grisons) रियासत के दुर्गम बर्फानी पर्वतों से निकलती है। इसकी लम्बाई अपने निवास से पूरी यात्रा समाप्त करने तक आठसौ मील है और कुल सिराव की भूमि इसकी पचहत्तर हजार वर्ग मील है। इसे हमारी कृष्णा नदी के बराबर समझना चाहिये। यदि राइन के निकासस्थान से लेकर इसके पतन स्थान जर्मन समुद्र तक एक सीधी लकीर खींची जाय तो उसकी लम्बाई चारसौ साठ मील होगी। इसकी साधारण गति का रुख मुख्यतया उत्तर और पश्चिम दिशाओं की तरफ है, लेकिन इसकी धारा कई स्थानों पर टेढ़े मेढ़े चक्कर काटती हुई गई है और एक स्थान पर तो इस नदी ने ताण्डव ही कर दिया है—यह बिलकुल विरुद्ध दिशा की ओर बहती है अर्थात् उत्तर पश्चिम की ओर जाती हुई एक दम घूम कर उलटी दक्षिण पूर्व की ओर बहने लगती है। अपने बालकपन के दो सौ पचास मील में तो इसने स्विटज़रलैण्ड के पहाड़ों में खूब चंचलता दिखलाई है, और अपनी यौवनावस्था के चारसौ पचास मील में एक लज्जावती रमणी की तरह जर्मन लोगों के हृदयों को आल्हादित करती हुई अपने पूरे लावण्य के साथ बहती है; अन्त के एक सौ मील में यह वृद्धा स्त्री की तरह बड़ी धीमी चाल से पग उठाती हुई हालैण्ड की

सौ पचास फ़ीट से लेकर छः सौ दस फ़ीट तक हो जाता है। समुद्र की सतह से अब इसकी ऊँचाई आठ सौ फ़ीट रह जाती है। इसकी चंचलता की लीला देखिये, इसने अब तक छः हज़ार नौ सौ फ़ीट की ऊँचाई से छलांगें मार लीं, कूदने फांदने का इस का सारा चाव पूरा हो गया, अपनी जन्मभूमि की चुल बुली आदतें छोड़ कर अब यह गंभीर स्वभाव वाले जर्मनों के देश में आकर गम्भीर रूप धारण करती है। बासल से मेन्स तक यह नदी एक चौड़ी घाटी में से होकर बहती है, जिसके एक किनारे की तरफ़ काला जंगल और दूसरी तरफ़ फ़ासगेस की पहाड़ियां चली गई हैं। यहाँ चौरस मैदान होने के कारण नदी के किनारे नीचे और समतल हैं और कई द्वीप इसके बीच में पड़ गये हैं जहाजों के आने जाने के सुभीते के लिये नदी के कई नुक्कड़ों को काट कर, उसकी वक्रता दूर कर, उसका मार्ग सीधा कर दिया गया है। मानहाइम के पास जाकर इसकी चौड़ाई पन्द्रह सौ फ़ीट हो गई है और मेन के पास टौनस पहाड़ की रोक के कारण यह पश्चिम दिशा की ओर घूमती है। यहां इसका पाट और भी बड़ा हो जाता है। बीस मील तक यह इसी प्रकार पश्चिम दिशा की ओर बहती है। बिंगन के पास जाकर इसने फिर अपना रुख बदला है और उत्तर की तरफ़ बहने लगती है। यहां इसकी जीवन-प्रगति का एक अनोखा दृश्य आरम्भ होता है। पहाड़ी चट्टानों की तंग घाटी में प्रवेश कर राइन नदी एक लज्जावती रमणी की तरह बड़े संकोच से आगे बढ़ती है। मैं

मार्ग इतना सङ्कीर्ण है कि इसके किनारे पर कई स्थानों में रेल और सड़क के लिये बड़ी मुश्किल से जगह मिली है। नदी की सारी जीवन यात्रा का यह सब से अधिक मुख्य और रम्य भाग है, यहाँ प्राचीन गढ़ियों के खण्डहर, विचित्र पर्वत-शृंग, खिलखिलाती अंगूरों की बेलें और अद्भुत कन्दरायें इतनी हैं कि जिनके कारण राहिन नदी प्रकृतिके पुजारियों और नैसर्गिक सौन्दर्य के उपासकों की अत्यन्त प्यारी हो गई है। आगे चल कर कोब्लेन्स के पास घाटी चौड़ी होने के कारण नदी का पाट बारह सौ फीट तक हो जाता है। एन्डरनाख के पास जाकर पहाड़ियां इसे फिर घेर लेती हैं और इसे इसकी जन्मभूमि की याद दिला कर फिर अपनी गोद में ले लेती हैं। उनकी गोद में खेलती हुई तंग रास्तों का चक्कर काट, जब यह सात पर्वतों (*Seven Mountains*) के नीचे पहुंचती है तो अपने दूर के सम्बन्धियों से विदा मांग खूब खोल कर पैर फैलाती है। यहां इसकी चौड़ाई तेरह सौ फीट से सोलह सौ फीट तक पहुंच जाती है। बोन से लेकर कोलोन से आगे चौरस घाटी आजाने के कारण नदी के किनारे समथल भूमि में है और इसके आगे चौरस मैदान आजाता है, इस लिये नदी की गति उत्तरोत्तर धीमी होती जाती है। ऐसा मालूम होता है मानो राहिन नदी थक कर आराम ले रही है।

अब इसका यौवनकाल पूरा हो जाता है। ऐमरिख के नीचे आकर नदी हालैण्ड में प्रवेश करती है—जहां यह फिर पश्चिम की ओर घूम जाती है। हालैण्ड में नदी के किनारे इतने नीचे

हैं कि वर्षा ऋतु की जल की बाढ़ से इर्द गिर्द की भूमि को बचाने के लिए कई जगह बाँध बाँधने की ज़रूरत पड़ी है। अब राहिन नदी के बुढ़ापे का समय आजाने के कारण इस का व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है और इसकी कई धारायें एक दूसरे से अलग हो कर मन माने रास्ते से चली जाती हैं। सब से बड़ी धारा अपना नाम वाल (Waal) रख कर जर्मन समुद्र में जा मिलती है और बाक़ी थोड़े से जल की धारा हालैण्ड में रह कर अपने बुढ़ापे के दिन पूरे करती है।

पाठक, मैं ने आपको राहिन नदी की जीवन कथा सुना दी। अब मैं आपको शीघ्र बर्लिन ले चलूंगा। वहां पहुंचने से पहिले एक झाकी फ्रैन्कफ़ोर्ट की लगा लेते हैं। फिर वहां से सीधे बर्लिन चलेंगे।



तेरहवां अध्याय

वीसबाडेन से फ्रैन्कफ़ोर्ट

वीसबाडेन से चलने से पहले मैंने प्रोफ़ेसर विनयकुमार सरकार जी को अपने बर्लिन पहुंचने की सूचना पत्र द्वारा दे दी। उनका पता अमरीकन एक्सप्रेस कम्पनी की मारफ़त था। दूरंदेशी के तौर पर मैंने यह सोचा कि सम्भव है मेरा पत्र प्रोफ़ेसर सरकार को समय पर न मिले। इसलिए मुझे किसी जर्मन दुभाषिये को अपने साथ ले चलना चाहिए। मैं जर्मन भाषा

नहीं जानता था और पढ़ने में असमर्थ होने के कारण जल्दी सीख भी नहीं सकता था। एक जर्मन नवयुवक को वीसबाडेन से अपने साथ ले लिया। उस बेचारे को वीसबाडेन से बाहर जानेका पासपोर्ट नहीं मिलता था। कई बार वह फ्रेन्च अधिकारियों के पास गया पर वहां उस गुलाम की सुने कौन। वह फ्रान्सीसियों को गालियां देता हुआ मेरे पास आया और क्रोध भरे स्वर से बोला—

"यदि मेरे पास रिवालवर हो तो मैं इन फ्रान्सीसी अफसरों को गोली से मार दूं।"

मैं जानता था कि वीसबाडेन में जर्मनों को कोई शस्त्र रखने की आज्ञा नहीं। ये लोग फ्रान्सीसियों द्वारा निशस्त्र किए गये हैं दीन भारतियों की तरह इनकी भी आज दुर्दशा है। मैंने उस नवयुवक को धीरज देकर कहा —

"धैर्य्य रक्खो। यह समय भी निकल जायेगा। मुझे यह बतलाओ कि तुम्हें पासपोर्ट कैसे मिल सकता है ?"

उसने कातर स्वर से कहा—

"यदि आप उस फ्रान्सीसी अफसर के पास चलें और उसको जाकर मेरे विषय में समझावें तो वह आपकी बात मान लेगा। आप जर्मन नहीं हैं, विदेशी हैं, इसलिए जब आप मुझको अपने साथ ले जाने की बात फ्रान्सीसी अफसर से कहेंगे तो वह मुझे पासपोर्ट दे देगा।"

उसका कहना सच निकला। जब मैं उस फ्रान्सीसी अफ़सर के पास गया और उसे अपना पासपोर्ट दिखलाया तो उसने मेरे कहने पर जर्मन नवयुवक को वीसबाडेन से बाहर जाने आने का पास दे दिया। कुदरत के खेल हैं, दस वर्ष पहिले जो जर्मनी सारे संसार को भयभीत करता था आज उसके बच्चे अपने शहर से बाहर विदेशियों की आज्ञा के बिना नहीं जा सकते।

ठीक समय पर हम लोग स्टेशन पर पहुंचे। यहां एक बड़ी दुर्घटना हो गई थी। बम के फैंके जाने के कारण स्टेशन की छत का एक भाग और कुछ नीचे की इमारत भग्नावस्था में थी। पता लगाने पर मालूम हुआ कि कुछ देश भक्त जर्मनों के षड्‌यंत्र से यह काम हुआ है। मेरा साथी नवयुवक जर्मन यह सब देख कर बड़ा खुश हुआ। बड़ी कठिनाई से मैंने उसे संयम में रक्खा। फ्रान्सीसी अफ़सर खास तौर से शहर से बाहर जाने और अन्दर आने वालों की तलाशियाँ लेते थे। हमारी तलाशी यहां नहीं हुई। नवयुवक मुझ से बोला कि जब हम लोग फ्रान्सीसियों की हद से निकलेंगे तब हमारी तलाशी होगी। सो ऐसा ही हुआ। तीन चार स्टेशन के बाद फ्रान्सीसियों की सीमा का स्टेशन आ गया। वहाँ मेरे सूट केसों की खूब तलाशी ली गई। तलाशी लेने वाला एक हबशी गुलाम मुसलमान था। तलाशी होने के बाद हम लोग स्टेशन से बाहर आये। थोड़ी दूर चलने के बाद हम एक बाड़े के पास पहुंचे। यहां छोटे से दर्वाजे के पास फ्रान्सीसी सिपाही खड़े थे। अपना अपना पास पोर्ट दिखला कर

हम लोग उस बाड़े से निकले और वर्त्तमान जर्मन रिपब्लिक में प्रवेश किया।

अब हम योरुप के महायुद्ध के बाद के जर्मनी में आ गये। जो हिस्सा जर्मनी का फ्रान्सीसियों ने दबाया हुआ है वहां हुक्म तो फ्रान्सीसियों का चलता है पर गवर्नमेण्ट जर्मनों की ही है। जिस वक्त मैं वहाँ पर था उस समय सिक्का, नोट, स्टैम्प, राज्य, काग़ज़-पत्र सभी जर्मनों के चलते थे। यह सब होने पर भी यह इलाक़ा पूरी गुलामी की अवस्था में था। उस इलाक़े को छोड़कर आज मैं जर्मनों की नई रिपब्लिक में दाखिल हुआ और उस नवजात रिपब्लिक के बड़े नगर फ्रैंकफोर्ट की गलियों में जा पहुंचा।

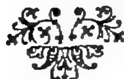
फ्रैंकफोर्ट जर्मनी के अत्यन्त प्रसिद्ध नगरों में से एक है। यह मेन नदी के किनारे पर बसा है। सन् १८६६ में पहिले यह नगर जर्मनी के चार स्वतन्त्र नगरों में से एक था। धन्यनामधन्य जगत् प्रसिद्ध कवि शिरोमणि जौन वुल्फगैंग गेटे की यह जन्म भूमि है। यह नगर समुद्र की सतह से तीन सौ तीस फीट ऊंचा है। मेन नदी की प्रशस्त और उपजाऊ घाटी में स्थित होने के कारण इसके दृश्य भी बड़े मनोहर हैं। इसके उत्तर की ओर टौनस पहाड़ियों का सिलसिला चला गया है। इसके इर्द गिर्द के स्थल सुन्दर उद्यानों और जंगलों से सुशोभित हैं और बसन्त ऋतु में मनोहर नैसर्गिक छटा यहां देखने में आती है। अन्य योरोपियन नगरों की तरह इसका फैलाव बहुत बढ़ गया है।

और जहां किसी काल में क़िले की दीवारें थीं वहां अब आधुनिक वैज्ञानिक ढंग की इमारतें और मुहल्ले बन गये हैं। जहां किसी काल में छोटी छोटी गलियां थीं वहां अब बड़ी बड़ी सड़कें, बिजली की गाड़ियां और होटल दिखाई देते हैं। फ्रेंकफोर्ट में एक बड़ा विश्वविद्यालय है, जहां सब प्रकार के साहित्य कला कौशल की शिक्षा दी जाती है। दूर दूर देशों के विद्यार्थियों को मैंने इस विश्वविद्यालय में देखा। जर्मनी अपनी वर्त्तमान निर्धन अवस्थामें भी अपनी संतान की शिक्षाका समुचित प्रबन्धकरता है। अपनी आवश्यकताओं को बहुत अधिक घटाकर प्रोफ़ेसर और विद्यार्थी लोग अपने देश की ज्ञान-वृद्धि करने में लगे हुए हैं।

गेटे महोदय का जन्म सन् १७४९ ईस्वी में हुआ था। जिस घर में आपका जन्म हुआ था उसे जर्मनों की गैएठ एसोसियेशन ने खरीद कर उसे राष्ट्र की सम्पत्ति बना दिया है। इस कवि सम्राट् के भक्त सारे संसार में फैले हुए हैं। मैंने भी जब कवि-मुकुट कालिदास के प्रसिद्ध नाटक शकुन्तला पर इस जर्मन कवि सम्राट् की लिखी हुई समालोचना पढ़ी थी तो मेरी श्रद्धा भी उनके प्रति बहुत बढ़ गई थी। ऐसे ही भक्त लोग उस गैएठ एसोसियेशन में शामिल हैं। एसोसियेशन ने उस घर को ठीक ऐसी ही दशा में रक्खा है जैसा कि वह गेटे महोदय के समय में था ताकि वह संसार का एक दर्शनीय स्थान बना रहे। उस मकान के छोटे छोटे कमरे अजायब घर से बना दिये गये हैं, जहां उस विद्वान् की साहित्य कला का प्रदर्शन कराया जाता है। मेज

नदी के दक्षिण में जो ऊँची भूमि है वहां बैठकर गेटे महोदय नगर की शोभा और उसके प्राकृतिक सौन्दर्य को देखा करते थे। नागरिकों ने उस स्थान में गेटे-विश्रामस्थल बना दिया है, जहां स्विस कारीगरी के नमूने का एक स्तूप भी बना दिया गया है। नगर के अन्दर गेटे-प्लात्स नाम का एक चौक है जहां कवि की मूर्ति विराजमान है।

ग्यारह बजे के बाद हम लोग एक होटल में पहुंचे और दस रुपये रात पर एक कमरा किराये पर लिया, इसमें सुबह का नाश्ता भी शामिल था। दो दिन हम इस नगर में रहे, विश्व-विद्यालय देखा और नगर की सैर की। तीसरे दिन सवेरे यहां से बर्लिन की ओर प्रस्थान किया।



लाठी समझ मैंने उसकी बाह अपनी बाह में दबाली और प्रेम से कहा,—"अब तुम्हीं मेरे पथप्रदर्शक हो।" नवयुवक हँसकर बोला—"मैं कभी बर्लिन में नहीं आया, लेकिन मेरी बूआ यहां रहती है। उसने सारी उम्र विवाह नहीं किया। चलो उसी के यहा चले।" घोड़ा गाड़ी किराया कर, अपना असबाब उस पर लाद, हम लोग शहर की ओर चले। जैसे मोटर गाड़ियों में तय किया हुआ फ़ासला जानने की मशीन लगी रहती है और उसके अनुसार दाम चुकाना पड़ता है इसी प्रकार जर्मनी में घोड़ा गाड़ियों में किराया जानने की घड़ी लगी रहती है, घंटों का हिसाब इस तरह प्रचलित नहीं। उस गाड़ी वाले को साठ हज़ार मार्क किराये के देने पड़े और उस वक्त मार्कों का भाव एक पौंड के तीन लाख था। जर्मन नवयुवक की बूआ स्कूल में अध्यापिका हैं। उनके घर पर सामान रखकर हम दोनों कमरे की तलाश में निकले। उस भलीमानस औरत ने इतना भी नहीं कहा कि आप लोग इतनी दूर से आये हैं जरा चाय पानी पी लीजिये, जरा सुस्ता लीजिये। उसने हम दोनों को उल्टे पांव मकान तलाश करने के लिये भेज दिया। बहुत मारे मारे फिरने के बाद उसी गली में एक कमरा हाथ लगा, जहा की मालकिन एक पोलिश लेडी थी। उसने प्रकट तौर पर मुझसे बड़ा प्रेम दिखाया और भारतीयों के साथ पूरी सहानुभूति का दम भरा, पर ये सब उसके मेरे पौण्ड लूटने के लिये हथकंडे थे। वह स्वयम् तो अंग्रेज़ी नहीं बोल सकती थी, लेकिन अंग्रेज़ और अमरीकन ग्राहकों की हजामत करने के लिये उसने एक खूसट बुढ़िया पाल रखी थी,

एक हमारी बड़ी दुभाषिया थी। मेरा साथी तो मेरे साथ इस मतलब के लिये था ही, उसी ने "गुटेन टाग ! गुटेन टाग !!" कह कर उसके साथ सब कुछ ठीक ठाक किया। हम लोग दो रात यहाँ रहे। तीसरे दिन जब बिल चुकाने का समय आया तो मुझे पता लगा कि मैं बुरी तरह ठगा गया हूं, पर मैं कर क्या सकता था ? ब्रिटिश गवनमेन्ट की मर्जी के विरुद्ध मैं जर्मनी में आया, इसके अर्थ यह "एक कड़ुवा दूसरा नीम चढ़ा" एक तो मैं गुलाम देश का आदमी, मेरी सरकार विदेशी दूसरे उसी सरकार की मर्जी के विरुद्ध जर्मनी आना, अब भला उस सरकार का कौन्सल किसी आपत्ति में मेरी मदद कर सकता है ? मैंने चुपचाप बिल चुका दिया। मेरे साथ का जर्मन नवयुवक तो पुलिस के नाम से भय खाता था, तब वह भला मेरी ऐसी बातों में क्या मदद कर सकता था। जो कुछ उस पोलिश लेडी ने मांगा वही उसे दे दिया गया।

इन दो दिनों में क्या मैंने बर्लिन प्रवासी भारतीयों की खोज नहीं की ? भला मैं चुप कैसे बैठ सकता था। दो दिन हम दोनों जने खूब बर्लिन की गलियों की खाक छानते रहे मगर कहीं किसी भारतीय का पता नहीं मिला। उन्टरलिंडन का पता लगाते लगाते वहां पहुंचे। वहां जाकर अमरीकन एक्सप्रेस कम्पनी का दफ़्तर तलाश किया। अंग्रेजी जानने वाला एक भद्र पुरुष मिला, वह हम लोगों के साथ मार्ग दिखाने चल पड़ा। एक्सप्रेस कम्पनी का दफ़्तर कुछ दूर नहीं था। मैं अपने मन में उस भद्र

कुली उस घर का दरवान था, यहा चोरों के डर मे हर एक हवेली के नीचे दरवान अपनी गृहस्थी के साथ रहता है। और घर में आने जाने वाले लोगों की ताड़ रखता है, मौक़े पर दरवाजा बन्द कर देता है, आगंतुक के घंटी बजाने पर दरवाजा खोल देता है। हवली में रहने वाले प्रत्येक स्त्री पुरुप के पास ड्योढ़ी के दरवाजे की चाबी रहती है। वे चाहे रात के बारह बजे आवें या तीन बजे, अपनी चाबी से दरवाजा खोल अपने अपने कमरों में चले जाते हैं। हवेली के हर एक खण्ड में दायें और बायें दो भाग (ऐपार्टमेण्टस) रहते हैं। हर एक के अन्दर दो चार किरायेदार रहते हैं, इस प्रकार छः सात मञ्जिल मकान में चालीस पचास आदमी और औरतें भाड़ेदार रहते हैं। खैर, हम लोग बातें करते हुए बिजली की गाड़ी के पास पहुंच गये। थोड़ी देर में ट्राम में बैठ उस ग्राम में पहुंचे, बड़ी मुश्किल से खोजते खोजते दियासलाई की तीलिया जला जला कर मकानों के नम्बरों को पढ़ते हुए अपने इच्छित स्थान पर पहुंचे, मगर निराशा यहा भी मुझे मुह चिढ़ा रही थी, मकान वाली औरत ने कमरा देने से इन्कार कर दिया, शायद उस के किसी अत्यन्त प्यारे की आने की टेलीफोन आगई थी। हम दोनों थक कर चूर हो गये थे, लेकिन जाते तो कहां जाते, सिर ढकने को कोई स्थान नहीं था। ट्राम में बैठ कर फिर अपनी आभृता बूला देवी के दरवाजे पर पहुंचे। वहा से एक विश्वासपात्र होटल का नाम पूछ कर उधर की ओर मुह किया। इस वक्त रातके दो बजने

को आये थे। होटल में पहुँच कर पैंतालीस हजार मार्क रात के हिसाब से कमरा किराये पर लिया और होटल वाले को खास तौर से पूछ लिया ताकि वह पीछे से शरारत न करे और किराया न बढ़ाये। पैंतालीस हजार मार्क दोनों के लिये एक कमरे का किराया तय कर हम लोग उस कमरे में पहुँचे और अपना असबाब उतरवा कुली को रवाना कर दिया। थके हारे, भूखे प्यासे खटिया पर पड़ गये, निद्रादेवी ने प्रेम से हमारा स्वागत किया।

सवेरा हुआ। जर्मन नवयुवक ग्यारह बजे उठा। शौच आदि से निवृत्त हो, गरम पानी से बदन को शुद्ध कर होटल से बाहर भोजन करने के लिये निकले। पास ही एक वेजीटेरियन होटल था, भूखे भेड़िये की तरह वहां झपटे और दाल, शाक, रोटी से खूब पेट भरा। इसके बाद भारतीयों की तलाश करने के लिये निकले। आखिर "जिन ढूढ़ा तिन पाइया गहरे पानी पैठ" वाली उक्ति चरितार्थ हुई और हम दोनों जने बर्लिन में भारतीयों के केन्द्रस्थल—इण्डियन इन्फोरमेशन ब्यूरो में पहुँचे। यहां मेरी बर्लिन की पहिली तीन रातों की कथा का अन्त हुआ।

पाठक अब आपको बर्लिन की सैर कराते हैं और उसकी मनोरंजक बातें बताते हैं, ध्यान से पढ़िये।

———o———

वाले भारतीयों की चिट्ठियाँ छोटे छोटे खानों में पड़ी रहती हैं। विद्यार्थी लोग फुरसत के समय आकर अपनी डाक यहां से लेजाते हैं, यह उनका डाकखाना है। इस कमरे से निकल कर हाल से होकर अगर आप आगे बढ़ेंगे तो मेजों पर भारतीय समाचार पत्रों और मेगज़ीनों की फ़ाइलें दिखाई देंगी। भारतीय लोग यहां आकर अपने देश के समाचार पत्रों को पढ़ते हैं और उनका लाभ लेते हैं। दो क़दम चल कर पास के एक कमरे में जर्मन लेडी बैठी काम करती है, जो मैनेजर की आज्ञानुसार ब्यूरो का सब पत्र व्यवहार तैयार करती है। हाल के बायें हाथ के कमरों में भारतीय व्यापारियों के सुभीते के लिये और इस संस्था को अपने पैरों के बल पर खड़ा करने के लिये एक तिजारती विभाग है, जो जर्मनी में तैयार होने वाली सब प्रकार के माल, व्यापार की खबरें भारतीय व्यापारियों को पहुंचाता है और भारतवर्ष के माल की सब सूचनायें जर्मन व्यापारियों को देता है। थोड़े में यह विभाग एक्सपोर्ट और इनपोर्ट अर्थात् माल जर्मनी से बाहर भेजने और जर्मनी में मंगाने का काम करता है। इसी के सम्बन्ध में इस व्यापारी विभाग की ओर से एक मेगज़ीन भी निकलती है। बस यही काम इस ब्यूरो का है—भारत से आने वाले विद्यार्थियों की सब प्रकार से मदद करना, भारत के समाचार पत्र मंगा कर बर्लिन निवासी भारतीयों को लाभ पहुंचाना, जर्मनी और भारत की आपस में व्यापार वृद्धि कराना और समय समय पर भारतीयों को इकट्ठा कर इस हाल

में उनकी सभायें करना तथा राष्ट्रीय दिनों को मनाना बस यही काम इस ब्यूरो का है, इसी काम को रात में भूत देखने वाले गुप्तचर सेडीशन के नाम से पुकारते हैं और नौकरशाही के पास लम्बी लम्बी चिट्ठियां यहाँ के समाचारों की भेजते हैं ताकि उनको बर्लिन में बैठे बैठे मुफ्त की तनख्वाह मिलती रहे।

तो फिर क्या बर्लिन में भारतीय क्रांति की कुछ भी बू नहीं ? इसका मुझे उत्तर स्पष्ट और सत्य देना चाहिये। कुछ लोग जिन्होंने किसी काल में अल्हड़ बच्चों की तरह क्रान्ति का खेल रचने की योजना की थी, वे अब इस समय बर्लिन में हैं। वे अपनी पिछली करतूतों पर खाक डाल कर शांति से अपना जीवन व्यतीत करने के लिये भारतवर्ष आने को तैयार हैं मगर भारत की नौकरशाही के हृदय में इतनी उदारता कहां कि जो इनको भारत में लौटने की आज्ञा देदे। ये लोग बेचारे परदेश में अत्यन्त दुख सहकर जीवन काट रहे हैं और जब कभी उन्हें मातृभूमि की जुदायगी की असह्य वेदना होती है तो वे क्रोध के आवेश में ब्रिटिश सरकार को पेट भर गालियां देते हैं। गुप्तचर तो कुत्तों की तरह इधर उधर लगे ही रहते हैं, वे उनके खिलाफ बड़ी भयंकर रिपोर्टें बना कर अंग्रेजी सरकार के पास भेज देते हैं, इस प्रकार बर्लिन के भूत की दीर्घआयु होती रहती है। यदि भारत में शासन करने वाले अंग्रेज नीति कुशल और उदार हृदय के होते तो बर्लिन के भूत की दाह क्रिया कभी की होजाती। बर्लिन में रहने वाले ये दुखी भारतीय बेचारे अपने देश में आकर

शांति से जीवन व्यतीत करते और भारतीय सरकार को जो हजारों रुपये इस गोरख धन्धे की पुन्डियां तलाश करने में खर्च करने पड़ते हैं वे बच जाते । भारतवर्ष की अंग्रेजी सरकार किसी ईमानदार और सच्चरित्र पुरुष को मित्र बनाना जानती ही नहीं, इसे जी हजूर, खुशामद खोर और बेअसूले आदमी अच्छे लगते हैं और उन्हीं से यह मित्रता करती है। बर्लिन के ये भारतीय बड़ी कठिनाई से अपने दिन काट रहे हैं । इनकी हार्दिक अभिलाषा है कि इनको भारत आने का पासपोर्ट मिल जाय और वे अपने आखिरी दिन माता के चरणों में काटें।

कई सज्जन मुझसे यह प्रश्न करेंगे कि जर्मनी से आने वाल "वेंगार्ड" नाम का पत्र क्या बला है ? इसके विषय में आप क्य कहते हैं ? धैर्य्य रखिये महाशय, मि० एस० एन राय के विष में आप मुझ से पूछना चाहते हैं। मैं आपकी बात समझ गया उनकी बात मैं आपको आगे चल कर बताऊंगा।



सोलहवां अध्याय

कुछ भारतीयों से परिचय

पिछले तीन दिन, मैं और मेरा जर्मन साथी बर्लिन गलियों में, भारतीयों का पता लगाते लगाते थक गये। चौ दिन जाकर कहीं ठीक ठीक पता मिला। वह भी इस तरह इंडियन इनफरमेशन ब्यूरो का जर्मन नाम टेलीफोन डाइरे

में तलाश किया, उस में ब्यूरो के पुराने दफ़्तर का पता मौजूद था, घूमते घामते वहां पहुंचे और वहां की हवेली के चपरासी से नये दफ़्तर का पता मिला। बिजली की गाड़ी में बैठकर फिर उल्टे लौटे और इंडियन-इनफ़रमेशन ब्यूरो के दफ़्तर में पहुंचे।

ठीक बारह बजे मैं भारतीयों के उस केन्द्र-स्थल में पहुंचा। घंटी दबाने पर एक जर्मन स्त्री ने दरवाज़ा खोल दिया। मेरे साथी ने उससे मेरे विषय में दो चार बातें कहीं। वह स्त्री मुझे अन्दर ले गई। वहां मेरी सब से पहिले भाई कर्त्ताराम से भेंट हुई। आपने बड़े आदर से मेरा स्वागत किया और मुझे दफ़्तर में ले जाकर बिठलाया। उस समय वहां कोई दूसरा भारतीय न था, सिर्फ़ दो जर्मन औरतें दफ़्तर का काम कर रही थीं। बात-चीत करने पर मुझे कर्त्ताराम जी का पूरा परिचय मिला। आप होशियारपुर ज़िले के रहने वाले हैं और बड़े सच्चे देशभक्त हैं। आप कुछ भी पढ़े लिखे नहीं, रोज़गार की तलाश में घूमते घामते अमरीका पहुंच गये, वहां अपने पुरुषार्थ से परिश्रम कर कुछ धन कमाया, आनन्द से दिन काटते थे और अपने घरवालों की भी समय समय पर मदद करते थे। सन् १९१२ में जो गदर चक्र लाला हरदयाल जी की कृपा से कैलीफ़ोर्निया में चला था, आप भी नाहक़ उसकी लपेट में आ गये। जातियों के उत्थान और पतन के विषय में यह बेचारे क्या जानते थे, इनको जैसा किसी ने बहका दिया बहक गये; यह बेचारे क्या, अच्छे अच्छे पढ़े लिखे बहक गये, उस समय के बहके हुओं की कथा यहां

रोमांचकारी है। जब लीडरों ने इनसे इनका सर्वस्व माग इनकी परीक्षा चाही तो बेचारे कर्त्तारामने अपनी सारी पूंजी लीडरों को भेंट कर दी। इन्हें क्या मालूम था कि यही लीडर आगे चल कर एक दूसरे के साथ जूतपेजार करेंगे और उस समय इनको रोटी मिलने की भी कठिनाई होगी। खैर लड़ाई के दिनों में ये जर्मनी आए और लाला हरदयाल के साथ तुर्की आदि देशों में घूमे। जब योरुप महायुद्ध खतम हो गया तो सब गोष्ठी टूट गई। जो चतुर और दीर्घदर्शी थे उन्होंने अपने लिए कुछ सरमाया जमा कर लिया ताकि कठिनाई के समय काम आवे, लेकिन बेचारे सीधे साधे और भोले भाले लोग मारे गये। कर्त्ताराम बेचारे अब बर्लिन में रहते हैं और फोटोग्राफी से किसी प्रकार अपनी मुसीबत के दिन काट रहे हैं। उन्होंने एक जर्मन स्त्री से विवाह कर लिया है और उससे इनका एक लड़का है। ऐसे आदमी को अगर भारत सरकार हिन्दुस्तान आने का पासपोर्ट दे देती तो वह यहां आकर शान्ति से अपने दिन काटलेता, लेकिन भारत सरकार तो खुशामदी और बेउसूले लोगों को ही मित्र बनाना जानती है, सच्चे और वीर पुरुषों से दोस्ती करना इसने सीखा ही नहीं, तभी तो जनता नौकरशाही की दुश्मन होती जाती है।

हम लोग कुछ देर बैठे बातें करते रहे। इतने में टेलीफोन की घंटी बजी, मालूम हुआ कि प्रोफ़ेसर बिनयकुमार सरकार मुझे बुला रहे हैं। कर्त्तारामजी को साथ लेकर हम लोग सरकार महोदय के घर गये। प्रोफ़ेसर सरकार से हमारे पाठक अवश्य परिचित

होंगे। आप देश के सच्चे सेवक हैं, विद्वान हैं, मार्मिक लेखक हैं, और शिक्षा विषय में खास तौर से निपुण हैं। भारतवर्ष गुलाम है, इसलिये उसके प्रेम ऐसे सुपुत्र अपनी पूरी शक्तियों से अपने देश को लाभ नहीं पहुंचा सकते। आप जर्मनी के विश्वविद्यालयों में समय समय पर व्याख्यान देते हैं और एशिया के लोगों के विषय में जो गलत ख्याल योरप निवासियों के दिलों में बैठे हुए हैं उन्हें दूर करने की चेष्टा करते हैं। आपने एक सुशीला आस्ट्रियन देवी के साथ विवाह कर लिया है। सरकार महाशय के बहुत से प्रेमियों को यह खबर आश्चर्य में डालेगी। मैं भी सरकार जी के विवाह की बात सुन कर हैरान हुआ था, पर परदेश में गोरी स्त्री होने से भारतीयों के बहुत से व्यावहारिक काम सहज में निकलते हैं। जैसे हिन्दुस्तान में विलायत से गोरी औरत विवाह लाने वाले हिन्दुस्तानी को अत्यन्त मुसीबत का सामना करना पड़ता है—वह गोरी औरत एक सफ़ेद हाथी का बोझ बन जाती है—इसके विपरीत योरप में रहने वाले भारतीय की गोरी धर्मपत्नी बड़ी उपयोगी सिद्ध होती है। मैंने यहां तक देखा है कि गोरी औरतें कमाती हैं और हिंदुस्तानी पति बैठ कर खाते हैं। ऐसे एक दो उदाहरण मैं आगे चल कर बतलऊँगा।

सरकार महाशय के यहां आज भारतीयों का अच्छा जमघट था। सबसे मुलाक़ात हुई, चाय पानी हुआ, संगीतका आलाप भी सुनने में आया, और आपस में वार्तालाप भी हुआ। यहां स्विटज़र-लैंएड के रहने वाले एक सज्जन पुरुष मि० हेगलसे मेरी मुलाकात हुई। वे अपनी स्त्री सहित यहां आए हुए थे। दोनों स्त्री पुरुष

बड़े विनयी और सुशील हैं। भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता पर आपकी बड़ी श्रद्धा है। आप से बातचीत कर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ।

प्रोफेसर सरकार के पास मैंने फ्रैंकफोर्ट से चलते समय तार भेजा था। वह तार उनको चार दिन बाद मिला, क्योंकि वे नित्यप्रति अमेरीकन एक्सप्रेस कम्पनी के दफ्तर में डाक लेने नहीं जाते, इसी कारणसे तीन चार दिन तक मुझे बर्लिनमें इतना कष्ट उठाना पड़ा। सरकार महाशय के मित्र मि० दास गुप्ता यहां एक व्यापारी हैं, जो अपने काम में बड़े होशियार हैं। आज की मीटिंग मि० दास गुप्ता जी के दफ्तर में हुई थी। समय समय पर हिन्दुस्तानी भाई यहां आकर एक दूसरे से मिलते हैं, क्योंकि गुप्ता बाबू का बर्ताव सबसे बड़ा अच्छा है। मीटिंग खतम होने के बाद शाम को मैं और मेरा जर्मन साथी दोनों होटल में लौट आए। आज शाम को भी वेजीटेरियन होटल में भोजन करने के लिए गये। बर्लिन में कई ऐसे होटल हैं जहां वैष्णवी भोजन करने वाले निश्चिन्त होकर भोजन कर सकते हैं। इन होटलों में मटर, दाल, शाक, तरकारी, यह सब कुछ, उबला हुआ मिलता है; इनमें नमक डाल कर रोटी के साथ खाते हैं। दूध और मक्खन इन दिनों यहां बहुत महगा था, दूध तो मिलता ही नहीं था मगर मक्खन मिल जाता था। बर्लिन में गरीब और अमीर, दोनों प्रकार के यात्री का, गुजारा हो सकता है। सस्ते से सस्ता और महगे से महँगा कमरा और भोजन, तलाश करने

पर मिल जाता है। नावाकिफ आदमी को चाहिए कि डाइरेक्ट्री में ऐसे होटलों की तलाश करले। प्राय हिंदुस्तानी ऐसे सस्ते होटलोंमें जाते हैं। ये वजिटेरियन होटल खूब भरे रहते हैं, नौकरों को ग्राहकों के मारे दम मारने की फुरसत नहीं मिलती। खा-पी कर जब आदमी बिल चुकाता है तो भोजन लाने वाले होटल के वेटर (आदमी या औरत) को कुछ 'टिप' देनी पड़ती है। 'टिप' का रिवाज सारे योरुप में है और यह बड़ा खराब रिवाज है। पेरिस के होटल वालों ने तो इसका सुधार इस प्रकार किया है कि वे बिल में 'सरविस' का हिसाब लगा लेते हैं और बिल देने वाला बिल देकर चला जाता है। बात एक ही है लेकिन इसमें इतना फर्क है कि ग्राहक नौकरों की दृष्टि में बुरा नहीं बनता। क्योंकि सब एक जैसी 'टिप' देते हैं। प्राय अमीर लोग होटलों के वेटरों को बहुत ज्यादा 'टिप' देकर बिगाड़ देते हैं, वेटर कम 'टिप' देने वाले ग्राहक की कुछ परवा नहीं करता, ग्राहक बेचारा बैठा बैठा चिल्लाया करता है। इसी बुराई को रोकने के लिये पेरिस के होटल वालों ने यह प्रबन्ध किया है। इतना करने पर भी धनमत्त और व्यभिचारी गोरे यात्री होटल के नौकरों को चोरी से 'टिप' दे देते हैं और उनसे मनोवांछित काम करवाते हैं। इसका इलाज कोई क्या कर सकता है।

अगले दिन सवेरे भाई खानखोजे मुझे होटल में मिलने के लिए आये। उनसे मेरा पहले का परिचय था। आप बड़े नम्र और विनयी हैं। आपने बड़ा-स्वार्थ त्याग किया है। अमेरिकन —गवर्नमेंट के तंग तंग-सी होकर आप कुलियों की तरह

गली के रेलवे स्टेशन से पश्चिम की तरफ एक स्टेशन छोड़ कर वेलीव्यू नाम का एक स्टेशन है। यह स्प्री नदी के किनारे पर है। इस स्टेशन के नजदीक की एक गली में मेरे लिये एक कमरा तलाश किया गया। भाई खानखोजे होटल वाले का सारा बिल चुका कर, मेरा सारा सामान लेकर, मेरे कमरे में पहुचे। पूछने पर पता लगा कि होटल वाले ने सुबह का नाश्ता, परदेशी टैक्स इत्यादि कई प्रकार के खर्च लगा कर तिगुना बिल बना लिया था। उसके साथ झगड़ा करना व्यर्थ समझ खानखोजेजी ने सब पैसा भर दिया। अब उस जर्मन नवयुवक की मुझे कुछ आवश्यकता न थी इसलिये उसका भी बिल मैंने चुका दिया और उसे वीसवाडेन जाने की छुट्टी दे दी। एक दो दिन बर्लिन में घूमघाम कर वह अपने घर चला गया।

अब मेरी बर्लिन की जिन्दगी का आरम्भ हुआ। वीसवाडेन में तो मैं क्लीनिक में था, इस लिये वहां नहाने धोने का बड़ा अच्छा इतजाम था, मैं पूरा खर्च देकर प्राय रोज नहा लिया करता था। वह सुविधा भला बर्लिन में यकायक कहां मिले यह महीना जौलाई का था। इन दिनों यहां गर्मी खासी पड़ती है, स्नान का प्रबन्ध न होने के कारण मुझे कष्ट था। योरुप में स्नान नित्य की आवश्यकता नहीं समझी जाती, इस कारण इसे अमीरों के विलास की वस्तु मानते हैं। मध्यम वृत्ति के लोग एक छोटे बर्तन में गरम पानी भर, स्पञ्ज पर साबुन लगा, अपना बदन धो लेते हैं। एक हिंदुस्तानी को, जिसे नित्य प्रति खुले पानी मे

स्नान करने की आदत हो, भला यह पत्ती-स्नान कैसे पसन्द आवे। बड़े बड़े शहरों में जन साधारण के लिए पब्लिक स्नानागार गवर्नमेण्ट की तरफ से बनाए गये हैं, जहां ग़रीब लोग गर्मियों के दिनों में हफ्ते में एक दो बार जाकर स्नान करते हैं, जो गाव या कस्बे समुद्र के पास हैं वहा लोग रोज जाकर मुक्त समुद्र में स्नान कर सकते हैं, लेकिन पश्चिमी, उत्तरी तथा मध्य योरुप में खुली हवा में स्नान करने के दिन वर्ष में बहुत थोड़े आते हैं, इस लिये शहरों में अच्छे अच्छे स्नानागर दुकानदार लोगों ने खोले हैं, जहाँ क़ीमत के अनुसार स्नान का सुख मनुष्य को मिल सकता है। बहुत से स्नानागार खास उन लोगों के लिये उपयुक्त होते हैं जो विषय भोग की लालसा से वहां आते हैं, वहां 'एक पन्थ दो काज' वाली बात होती है।

मेरा आगमन सुन कर कई अन्य भारतीय मुझे मिलने के लिए आए। बोल्शेविक दल के भारतीय नेता मि० एम० एन० राय मुझे खास तौर से मिलने के लिए आये। वे मुझे अपने दल में मिलाना चाहते थे। डेढ़ दो घटे तक हमारी आपस में खूब बात चीत हुई। वे मुझे अपने मत में न ला सके और मेरी तो कोई इच्छा उनका मत परिवर्तन करने की न थी, क्योंकि वे भारत तो लौट सकते ही न थे फिर उनका मत परिवर्तन करके मैं करता भी क्या? भारत की नौकरशाही को तो ईमान्दार और स्वतन्त्र मत रखने वाला पुरुष विष सा लगता है, उसे तो जीहुजूर और झुक झुक कर सलाम करने

तो शक कुछ बढ गया, लेकिन बर्लिन आकर मुझे पूरा निश्चय हो गया कि वह सी० आई० डी० का आदमी है। ये लोग गवर्नमेण्ट से भी पैसा वसूल करते हैं और देश हितैषी बन कर अपने लोगों को भी ठगते हैं। गुलाम जाति के बच्चों का कैसा पतन होता है।

एक भारतीय सज्जन मेरे पास प्राय: रोज आया करते थे। मैं स्वयम् अकेले कहीं आ जा नहीं सकता था, इसलिये उनके साथ वेजीटेरियन होटल में दोनों वक्त भोजन करने के लिये जाता था। मेरी बड़ी निर्भरता की जिन्दगी थी। सारा काम मेरा दूसरों पर अवलम्बित रहता था इस कारण मैं किसी समय बड़ा बेचैन हो उठता था, पर यह सब लाचारी की बातें थी। पन्द्रह दिन बड़ी मुश्किल से इस कमरे में कटे, तब मैंने ऐसा कमरा तलाश किया जहा मुझे घर पर ही खाना मिल सके। ढूढ़ते ढूढ़ते एक जर्मन ईसाई मिशनरी का मकान मिला। यह मिशनरी हिन्दुस्तान में पन्द्रह बीस वर्ष रहा था। लड़ाई के समय अंग्रेजी सरकार ने उसे हिन्दुस्तान से निकाल दिया था और अब वह बेचारा बर्लिन में बड़ी मुश्किल से दिन काट रहा था। उसके यहा मुझे ऐसा कमरा मिला जहाँ नहाने का आराम था। वहा का हाल लिखने से पहले मैं कुछ मनोरंजक बातें यहां के मार्क के दुर्भाग्य की सुनाता हूं।

———

अठारहवाँ अध्याय

पौण्ड और डालर की महिमा

मैं अपने पाठकों को जर्मनीके क्रांतिकारी सिक्के (मार्क Mark) के सम्बन्ध की मनोरंजक बातें सुनाता हूं। संसार के हजारों घर इस मार्क के फेर में आकर बरबाद हो गये और जर्मनी के सेठों ने दुनिया को कागज दे देकर, सबको बेवकूफ बना, करोड़ों के वारे न्यारे कर लिए। अपने सब प्रकार के पाठकों के लाभार्थ मैं इस विषय पर कुछ अधिक प्रकाश डालता हूं।

जिस समय जर्मनी योरुपीय महायुद्ध में हार गया और मित्र राष्ट्रों ने उसके सिर पर भयंकर दंड थोपा तो उसकी साख दुनियामें गिर गई, उसके सिक्केकी क़ीमत कम होने लगी। लड़ाई से पहले एक पौन्ड के बीस जर्मन मार्क मिलते थे। लड़ाई के बाद मार्कों की क़ीमत दिन प्रति दिन घटने लगी। वे पौन्ड के सौ, दो सौ, तीन सौ, मिलने लगे। जर्मनी पक्का माल तय्यार करने में विश्वव्यापी ख्याति रखता है। उसकी चीजों के ग्राहक संसार के सभी देशों में हैं। उन देशों के व्यापारियों ने सोचा कि जर्मन मार्क की क़ीमत इस समय बहुत सस्ती है, अच्छा होगा यदि हम बहुत से मार्क खरीद कर रखलें, महीने दो महीने, चार महीने के बाद जब मार्क का भाव फिर बढ़ेगा तो हम बहुत लाभ उठायेंगे, या जर्मनी से बहुत सस्ता माल मंगा लेंगे। इसी उम्मेद पर सभी देशों के व्यापारियों ने जर्मनी के मार्क खरीद-

में भोजन सम्बन्धी दंगे हुए और इसी कारण से जर्मन लोग परदेशियों के प्रति घृणा करने लगे।

ये सब मुसीबतें बेचारे निर्धनों और मध्यम वृत्ति के लोगों पर आई, यहूदी बनिये और पूंजीपति बड़े मजे में रहे। इन्होंने ऐसे भयंकर समय में भी अपने हाथ रंगे। सच है, "दुनिया चाहे बहिश्त में जाय या दोजख में, पर मुल्लाजी को तो अपने हलुवे मांडे से काम है।" यही दशा यहूदी बनियों की थी। फ्री ड्रिकगली में सुबह शाम डालरों और पौन्डों का व्यापार होता था। आप स्टेशन से उतरिए और गली में घुसिए, आपको देख कर ये लोग फौरन पहिचान लेंगे कि आप परदेशी हैं, बस फिर आप के पीछे लग जायेंगे। बैंक अगर पौंड का सरकारी निरख दस करोड़ मार्क देता है तो ये बनिये आपको पौन्ड के सत्तरह करोड़ मार्ग देंगे और चुपके से किसी गली के कोने में लेजा कर आप से झट सौदा कर लेंगे और रफूचक्कर हो जायेंगे। आप पूछेंगे कि ऐसी चोरी क्यों? उत्तर स्पष्ट है। इस प्रकार का सौदा क़ानून के विरुद्ध था मगर पैसे का यार तो क़ानून तोड़ कर ही पैसा कमा सकता है। ये बनिए अपनी क़ौम और देश के दुश्मन सिवाय अपने स्वार्थ के दूसरी कोई वस्तु नहीं देखते, रुपया इनका खुदा होता है, उसके लिए वे नीच से नीच काम भी कर डालेंगे। अच्छा तो इनके पास इतने मार्क कहां से आते थे जो वे सरकारी निरख से इतना बढ़ कर दे देते थे? यह भी जरा समझने की बात है। बर्लिन में रोज मार्कों का सरकारी रेट बताने वाले तीन

अखबार निकलते थे-एक सवेरे, एक मध्याह्न और एक शाम को। इन अखबारोंमें न्यूयार्क, लंडन और बर्लिन का रेट छपा रहता था। चार बजे के अखबार में आखिरी निरख रहने से लोग उसी समय अपने पौण्ड और डालर भुनाया करते थे। जब बर्लिन में मार्क का रेट एक पौंड के दस करोड़ छपता था तो उसी समय न्यूयार्क और लण्डनका रेट बर्लिन से तिगुना चौगुना छपता था। इन यहूदी बनियों और सेठों का खाता न्यूयार्क और लंडन में वहां की बैंकों के साथ खुला रहता है। ये लोग फौरन तार द्वारा लडन अथवा न्यूयार्क को संदेशा भेज देते थे कि उनके लिये इतने इतने पौंड के मार्क खरीद करले और वहां के बैंक वाले बर्लिन की बैंकों को तार द्वारा सूचना देते थे कि फलाने फलाने आदमी को इतने मार्क देदे। बैंकों से उतने मार्क लेकर वे चोरी से उन्हें परदेशियोंके हाथ बेचकर अपने पौण्ड और डालर खड़े करते थे। दूसरे बड़े बड़े जर्मन व्यापारियों, जिनका लाखों रुपये का व्यापार होता था, के यहां की दुकानों में जो मार्क आते थे उनका उसी दिन बेचना उनके लिये आवश्यक हो जाता था। मार्क की क़ीमत स्थायी न होने के कारण उनकी क़ीमत दूसरे दिन आधी के क़रीब रह जाती थी, इसलिये वे क़ानूनी खतरे में पड़ कर भी अधिक रेट पर मार्क देकर पौण्ड और डालर जमा करते थे ताकि उन्हें विदेशी कच्चा माल खरीदने में दिक्कत न हो। जर्मनी के बाहर मार्कों को कोई पूछता न था। सभी विदेशी व्यापारी जर्मनी से पक्का माल या डालर या पौन्ड लेकर अपना कच्चा माल देते थे। जर्मनी का इलाका रूर फ्रांस के हाथ में होने के कारण जर्मनी का

सारा कोयला इंगलेण्ड से खरीदना पड़ता था। इंगलेण्ड के व्यापारी कोयले का दाम पौण्ड और डालरों में मांगते थे, इस लिये जर्मनी की गलियों में व्यापारी लोगों को मजबूरन क़ानून विरुद्ध काम करना पड़ता था। बर्लिन में बहुत बड़ी बड़ी दुकाने हैं जहाँ हज़ारों रुपये का माल रोज़ बिकता है। उन दुकान वालों को ग्राहक लोग उनके माल की क़ीमत मार्कों में देते थे। यदि वे दुकानदार जल्दी उन मार्कों को किसी तरह न बेचते और स्थायी धन, पौण्ड और डालर, इकट्ठा न करते तो उनका दिवाला निकल जाता। यही वजह इन मार्कों के बैंक दर से सस्ता मिलने की थी। जिनके पास पौण्ड और डालर थे उनकी पाचों घी में थीं। बर्लिन की गलियों में कई बार जर्मन बालकों ने मुझे घेर लिया, मुझे परदेशी जान वे मुझसे डालर मांगते थे और बड़ी उत्सुकता से पौण्ड के दर्शन करना चाहते थे, क्योंकि एक पौण्ड के करोंमार्क मिलते थे इसलिये इन बच्चों की दृष्टि में पौण्ड रखने वाले परदेशी लोग बहुत बड़े आदमी माने जाते थे।

लेकिन ऐसी दशा बहुत दिन तक न रही। सेप्टेम्बर में चीजें बहुत महँगी होने लगीं। उद्यमी जर्मन लोगों ने अपने प्यारे देश पर आई हुई इस भीषण आर्थिक विपत्ति का मुकाबिला किया। वे हिन्दुस्तानियों की तरह क़िस्मत के भरोसे हाथ पर हाथ धर करबैठ नहीं रहे, बल्कि धैर्य और सहनशीलता से उन्होंने उस विपत्ति का मुकाबिला किया और उसके दूर करने के उपाय निकाले। चीजों का दाम, मजदूरों की मजदूरी, क्लर्कों का वेतन

तब पौण्ड और डालर के निरख में मिलने लगा। जिस गति में मार्क गिरता उसी गति के अनुसार नित्य प्रति क़ीमतें बढ़ाई जाने लगीं। अक्टूबर तक यह तरीक़ा चला, पर इससे भी पूरा संतोषजनक फल न निकला। तब जर्मनी के चैन्सलर, कूनो, अमरीका गये और वहां जाकर जर्मन अमरीकनों को अपने देश के दुःख की गाथा सुनाई। वहाँ की मदद से हैमबर्ग में बहुत बड़े सरमाये का एक बैंक खोला गया। स्वार्थी इंगलिस्तान ने भी फ्रान्स का विरोधी बनकर जर्मनी के साथ सहानुभूति की। जर्मनी ने एक नया नोट निकाला और उसका नाम रैन्टन मार्क रक्खा। पुराने नोट छपने बन्द हो गये और पौन्ड के उन्नीस बीस नये गोल्ड मार्क मिलने लगे। जिनके पास पुराने नोट थे, उनकी सुविधा के लिये एक अर्ब का एक गोल्ड मार्क कर दिया गया। पुलिस ने सस्ते मार्क बेचने वाले यहूदियों को जेलों में भर दिया, जनता ने कई शहरों में परदेशियों को पीटा, परदेशी जर्मनी छोड़ कर अपने अपने देशों को चले गये, सब क़ीमतें लड़ाई के पहिले के निरख पर आ गईं, जनता ने अपनी गवनमेंट के साथ पूरा सहयोग किया और दिसम्बर में जर्मनी की आर्थिक दशा बहुत अधिक सुधर गई।

पाठक, मैंने आपको डालर और पौन्ड की महिमा सुनाई, इसी के अन्दर जर्मन जाति के जीवन की घोर विपत्ति का दिग्दर्शन भी करा दिया। सन् १९२३ के वर्ष का दारुण दुःख जर्मन जाति कभी न भूलेगी और उस दुःख के मुख्य कारण, फ्रान्स को, कभी क्षमा न करेगी।

उन्नीसवाँ अध्याय

आँख का इलाज

बर्लिन के स्टिगलित्स मुहल्ले में स्लास्स स्ट्रास नाम की गली के आठवें नम्बर की हवेली में मैंने एक कमरा किराये पर ले लिया। यहा मुझे स्नान का आराम था, पर खाने का कष्ट बराबर बना रहा। अच्छे मक्खन और दूध के लिये तो मैं तरसता था। इस दिक्कत को मिटाने के हेतु मैंने भारत से घी और अन्य खाद्य पदार्थ मगाने का निश्चय किया और सोचा कि मेरी आख का इलाज होने तक सब आवश्यक पदार्थ मेरे पास पहुच जायँगे, तदनुसार अपने प्रेमियों को सामान भेजनेके लिये पत्र लिख दिए। अब आख के इलाज की बात सुनिए।

बर्लिन आकर मैंने प्रोफेसर सरकार द्वारा आंख के डाक्टरों के विषय में पूछताछ कराई। एक प्रसिद्ध यहूदी डाक्टर के पास मैं आँख दिखाने के लिये गया। उसने आँखें देखकर कहा, "दाहिनी आख के लिये मैं कुछ नहीं कर सकता, हा बांई आख का आपरेशन हो सकता है।" पहिले मैं उससे इलाज कराने के लिये तय्यार होगया, पर पीछे मैंने सोचा कि यह बुड्ढा डाक्टर है, आपरेशन करते समय इसका कहीं हाथ हिल गया तो जुल्म हो जायगा, ऐसा सोचकर मैंने उससे इलाज कराने का विचार छोड़ दिया। बर्लिन में आंखों के अच्छे अच्छे डाक्टर हैं। आख का जो अस्पताल सरकारी है उसके अध्यक्ष डाक्टर कुकमॅन के पास

मैंने जाने का निश्चय किया। मि० चट्टोपाध्याय बहुत वर्षों से योरुप में रहते हैं, वे बड़ी अच्छी जर्मनभाषा बोलते हैं। मि० चट्टोपाध्याय को साथ लेकर मैं बर्लिन यूनीवर्सिटी के आंख के अस्पताल में गया। प्रोफ़ेसर क्रुकमैन ने मेरी आंख की परीक्षा की और प्रोफ़ेसर माइस्नर, जो उनके सहायक डाक्टर हैं, ने भी मेरी आंखों का निरीक्षण किया। दोनों की यही राय हुई कि दाहिनी आंख को बिल्कुल छेड़ना नहीं चाहिये, हां बाईं आंख का इलाज हो सकता है। मुझे इन दोनों डाक्टरों ने अपने शील स्वभाव और सद्व्यवहार से प्रसन्न कर दिया और मैंने इनसे इलाज कराने का निश्चय कर लिया। चूंकि मेरी आंख का मोतिया कचा था इस कारण मोतिया काटने में बड़ी सावधानी की ज़रूरत थी। डाक्टरों की यह राय हुई कि कच्चे मोतिये को पकाने के लिये पहले आरम्भिक आपरेशन किया जाय और फिर छः हफ़्ते के बाद मोतिया काटा जाय। जुलाई के अखीर में मेरा प्रारम्भिक इलाज प्रोफ़ेसर माइस्नर ने कर दिया। यह इलाज एक प्राइवेट क्लीनिक में किया गया, जहाँ दूर दूर देशों के अमीर लोग भिन्न भिन्न बीमारियों का इलाज कराने के लिये आते हैं। आंखों के बीमारों का इलाज यहां प्रोफ़ेसर क्रुकमैन और प्रोफ़ेसर माइस्नर के सुपुर्द है। दूसरी बीमारियों का इलाज करने के लिये अलग अलग डाक्टर नियुक्त हैं जो केवल बीमार का आपरेशन करते हैं, उन्हें सुबह शाम आकर देखते हैं और आखिरी पट्टी स्वयम् खोलते हैं। बीमार की देख भाल, उसको समय पर भोजन, उसको डाक्टर के आदेशानुसार दवाई देने आदि की

मत्र जिम्मेदारी उस क्लीनिक की अधिष्ठात्री स्त्री के सुपुर्द है। वही स्त्री बीमारों के लिये उपचारिकायें (Nurses) नियत करती हैं। क्लीनिक के प्रबन्ध और उसके बिलों के चुकाने में डाक्टरों का कोई सम्बन्ध नहीं क्लीनिक का मालिक अपने आर्थिक फायदे के लिये मनमाना किराया और भोजन का दाम आदि वसूल करता है। यह क्लीनिक,जिसमें मैं था,बड़ा साफ सुथरा बना है, खाने पीने का भी बड़ा अच्छा प्रबन्ध है, उपचारिकायें भी बड़ी अच्छी हैं, परन्तु लूटते जी खोलकर हैं—खूब दाम वसूल करते हैं। खैर मेरा प्रारम्भिक इलाज खतम होने के बाद मैं खुशी खुशी अपने स्थान पर चला आया, मेरी दाई मुझे मेरे कमरे तक आकर छोड़ गई।

अभी मुझे पढ़ने लिखने का सुभीता नहीं हुआ था, क्योंकि अभी मोतिया तो कटा ही नहीं था। जिस कमरे में मैं रहता था उसके नजदीक रेल का स्टेशन न होने के कारण मुझे शहर में जाने आने की दिक्कत रहती थी, इसलिये मैंने कमरा बदलने का विचार किया और फिर बिलव्यू स्टेशन के पास की गली में मुझे बहुत अच्छा कमरा रहने के लिये मिल गया। यहां मुझे नहाने, खाने दोनों का आराम था। जिनके यहां मैं रहता था, उनके कोई सन्तान नहीं थी। स्त्री और पुरुष दोनों का स्वभाव अच्छा था। यहां मेरे दिन बड़े सुख से कटे, साफ सुथरा मकान, पांचवीं छत पर कमरा, मन लायक भोजन, बड़ी चौड़ी गली, सामने की नदी, सब प्रकार का आराम मुझे वहां था। दो महीने मेरे यहां

पड़े मरने में पांव गये, इसी बीच मेरी आंख का मोतिया काटने का समय आगया।

परमात्मा का नाम लेकर मैं फिर क्लीनिक में पहुंचा। प्रोफ़ेसर मुकर्जेन और प्रोफ़ेसर माइस्तर ने मिल कर मेरी आंख का मोतिया काट दिया। कैसी सावधानी से मोतिया काटा, यह देख कर मैं दंग रह गया। कैसी चिन्ता, कैसी सहानुभूति, इन लोगों की बीमार के लिये रहती है। पैने चाकू से मेरी आंख का मोतिया इस खूबसूरती से काटा कि मुझे कुछ भी मालूम नहीं हुआ। क्लीनिक में दो उपचारिकायें मेरी आंख की रक्षा के लिये नियुक्त की गईं, ठीक समय पर, घड़ी देख कर, सब सेवा होती थी। कई दिन तक मैं क्लीनिक में रहा। जब डाक्टर ने क्लीनिक से जाने की छुट्टी दे दी तो वहां से निकला। अबतक मैं पढ़ नहीं सकता था, क्योंकि आंख के आगे एक पतली झिल्ली आगई थी। डाक्टर ने मुझे समझा दिया कि यह आप ही आप कट जायगी, सो वैसा ही हुआ, महीने डेढ़ महीनेके बाद आँख साफ़ हो गई और मैं बिना चश्मे के अक्षर पढ़ने लगा। नवम्बर के आख़ीर में प्रोफ़ेसर ने मुझे आंख का चश्मा दिया और यह कह दिया कि छ महीने या साल के बाद नया चश्मा लेना पड़ेगा, साथ ही यह भी समझा दिया कि आंख का केपस्यूल न निकालने के कारण, सम्भव है दो चार दस वर्ष के बाद आंख पर एक बारीक़ परदा फिर आजाए, लेकिन उससे डरने की कोई बात नहीं, उसे हिंदुस्तान का कोई भी आंख का अच्छा डाक्टर

दूर कर सकेगा। सारा केपस्यूल इस लिये नहीं निकाला गया, क्योंकि उसके निकालने से आंख की ज्योति के पानी के निकल जाने का डर रहता है। हिंदुस्तान में जिस डाक्टर ने मेरी दाहिनी आंख का मोतिया काटा था उसने आंख का सारा केपस्यूल बाहर निकाल दिया था, इसी कारण मुझे सात महीने तक दुःख भोगना पड़ा और आंख की ज्योति का पानी भी बहुत कुछ निकल गया। हिंदुस्तान वाले मोगा के डाक्टर मथुरादास का तरीका बड़ा पुराना, बड़ा रद्दी और खौफनाक है। मेरा अपना ख्याल है कि मोगा से जो लोग आंखों का इलाज करा के आते होंगे उन में से बहुत कम लोगों को पूरा फ़ायदा होता होगा, अधिकांश लोग अपनी प्रारब्ध पर ही रोते रह जाते होंगे।

मुझे आश्चर्य है कि हिंदुस्तान की सभ्य गवर्मेन्ट झूठे डाक्टरों और धोखेबाज वैद्यों के हाथ से भोली भाली जनता को बचाने के लिये क्यों क़ानून नहीं बनाती। रिवालवर और बन्दूक रखने के लिये लाइसेन्स लेना पड़ता है और कैसे कैसे कठिन क़ानून उसके सम्बन्ध में गवर्नमेण्ट ने बनाए हैं। पर आंख जैसी अमूल्य वस्तु और तन्दुरस्ती जैसी अलभ्य चीज के बचाने के लिये कोई सख़्त क़ानून नहीं। हजारों स्त्री और पुरुष नीम हकीमों और नालायक वैद्यों द्वारा लूटे जाते हैं, हजारों आदमियों को आंखें धूर्त और बदमाश लोग घूम घूम कर खराब करते फिरते हैं। गाँव के भोले भाले लोग इन स्वार्थी मनुष्यों के जाल में फस कर हर साल अत्यन्त कष्ट भोगते हैं। क्या कोई दयालु सज्जन ग्राम

निवासी दीन भारतियों को इन भेड़ियों के जाल से बचाने के लिये सख्त क़ानून बनवाने की चेष्टा करेगा ? योरुप और अमेरीका में यदि कोई मनुष्य, जिसने बाक़ायदा मेडीकल कालेज में तालीम न पाई हो, इस प्रकार लोगों की तन्दुरुस्ती और आंखें बिगाड़े तो वहां की जनता उसे पकड़ कर जीता जलावें और पीछे क़ानून की बात करे। आंखों का इलाज करने वाले ये नर पिशाच सूआ लिये लिये फिरते हैं और ग़रीब लोगोंकी आंखोंमें चुभोकर मनमाने रुपये वसूल कर, बेचारों की आंखें बिगाड़ भाग जाते हैं। मैंने सुना है कि पंजाब के भाटरे और हाथ देखने वाले रौल बहुधा गावों में जाकर ऐसा अत्याचार करते हैं। हे ईश्वर ! क्या कभी इन दीन भारतियों के असह्य दुःखों के दूर होने का समय आयगा, जब योरुप के स्वतन्त्र देशा की तरह हम लोगभी वूर्त्ता और नरपिशाचों को जहन्नुम में पहुंचा सकेंगे।

पाठक, आप कहते होंगे कि स्वामी सत्यदेवने बहुत दुखी होकर उपर्युक्त बातें लिखी हैं। सचमुच मैंने अत्यन्त दुखी होकर अपने हृदय के भाव प्रकट किये हैं। मेरी दाहिनी आंख का इलाज तो एक ऐसे डाक्टर ने किया, जो अपने विषय को थोड़ा जानता है, हज़ारों का इलाज करता है, असिस्टेंस्ट सर्जन है, तब भी मुझे उनकी भूल के कारण अत्यन्त कष्ट भोगना पड़ा यदि वह आंख का होशियार डाक्टर होता तो पन्द्रह दिन में मेरी आंख के ज़ख्म भर जाते। भला जो दीन ग्राम निवासी भारतीय, केवल टका कमाने वाले डाकूओं से आँखें कटवा लेते हैं उन को कितना

समय आखें जरा अच्छी हुई इस समय ऋतु सैर के अनुकूल न रही । योरुप हिन्दुस्तान की तरह नहीं है । यहां शीत का प्राधान्य रहता है, इसलिए योरुप के उत्तरीय देशों में खास तौर से गर्मी के दिन आनन्द के दिन माने जाते हैं । हमारे यहां जाड़े के दिन तन्दुरुस्ती और घूमने फिरने के दिन होते हैं । योरुप के दक्षिणी भाग के देशों को छोड़कर बाकी सब देशों में गर्मी की ऋतु ही सैर सपाटे की ऋतु होती है । इटली और स्पेनमें भी बहुत अधिक गर्मी नहीं पड़ती, इनके उत्तरीय विभागों में सर्द ऋतु में खूब हिम पड़ता है, इस कारण सारा योरुप शीत-प्रधान प्रदेश है, अतएव जो कुछ मैंने थोड़ा बहुत गर्मी की ऋतु में देखा भाला, जो खास खास स्थान जाड़े के दिनों में शहर के अन्दर मेरे देखने में आये, जिन दो चारस्थानों में मैं अधिक घूमा फिरा, उन्हींका वर्णन मैं यहांपर करूंगा और साथ ही कुछ अन्य रोचक बातें भी बताऊंगा ।

इस विख्यात नगर में सब से अधिक भव्य और दर्शनीय स्थल उन्टरडेनलिंडन और उसके इर्द गिर्द की शाही इमारतें हैं । जैसे लन्डन में पिकाडिल्ली प्रसिद्ध है वैसे ही बर्लिन में उन्टर-डेन लिंडन । ब्रैन्डनबर्ग के मशहूर ऐतिहासिक दर्वाजे से लेकर शाही महल तक जो बाजार चला गया है उसी का नाम उन्टर डेन लिंडन है । व्यापारिक दृष्टि से भी यह बाजार शहर के सब बाजारों से बढ़ चढ़ कर है । सुथरा प्रशस्त बाजार, दोनों तरफ सूब सूरत इमारतें, बीच में विहारस्थल, जिनके दोनों तरफ नीबू के वृक्षों की कतारें, बीच में बेंचें पड़ी हुई दर्शकों को विश्राम

करने के लिए बुलाती हैं और कहती हैं "यहां आओ, इन बेंचों पर बैठो और हमारे परम प्यारे बर्लिन--की शोभा देखो।" इसी प्रेम निमंत्रण को सुन कर सैकड़ों, हजारों सैलानी लोग, मर्द औरतें और बच्चे, फेशनेबल कपड़े पहिन कर यहां आते हैं। लिंडन और फ्रीड्रीक स्ट्रास के कोने के विहारस्थलों में मध्यान्ह बाद इन बेंचों पर सैकड़ों सुन्दर युवक और युवतियाँ एक दूसरे के साथ प्रेमालाप करती हुई दिखाई देती हैं। रात के समय तो इस बाजार में रसिक जीवों के लिए बड़ी बहार रहती है। यह बाजार एक सौ अठानवे फीट चौड़ा है और इसकी लम्बाई ब्रेंडेनबर्ग के दरवाजे से लेकर शाही महल के दरवाजे तक एक मील के करीब है। यद्यपि पेरिस के जगत् विख्यात बलावार्ड जितनी इसकी लम्बाई नहीं, पर अपनी ऐतिहासिक इमारतों,विशाल अट्टालिकाओं बड़े बड़े होटलों तथा मनोहर दुकानों के लिहाज से उससे किसी बात में कम भी नहीं है।

मुझे इस बाजार में प्रायः पौण्ड भुनाने के लिये आना पड़ता था। शाम के समय जब मुझे किसी भारतीय से मिलना होता तो इसी जगह मुलाकात होती थी,फ्रीड्रीकस्ट्रास और लिंडनके कोने पर हिन्दुस्तानी भाई मिला करते थे। चूँकि मैं जर्मन भाषा नहीं जानता था, इस लिये मार्कों के नोट खरीदने में,जर्मन जानने वाले किसी हिन्दुस्तानी की आवश्यकता पड़ती थी। दूसरे इसी बाजार के पास शहर का पोस्ट आफिस भी है और पास ही अमरीकन-एक्सप्रेस-कम्पनी का दफ्तर भी। इन दोनों

स्थानों को रास्ता उन्टरडेनलिंडन होकर जाता है। मोटरों की यहां इतनी भरमार रहती है कि थोड़ी सी गफलत करने से आदमी दब कर मर जाय। बाज वक्त दस पन्द्रह मिनट तक रास्ता मिलने के लिये कोनों पर खड़े रहना पड़ता है।

यह बाजार मुझे कभी न भूलेगा। विलेव्यू से शहर आने जाने के लिये मैं महीने भर का रेलका टिकट खरीद लिया करता था क्योंकि अमरीकन एक्सप्रेस कम्पनी में मुझे प्राय रोज डाक लेने के लिये जाना पड़ता था, दूसरे आखों का अस्पताल भी फ्रिड्रिकस्ट्रास के पास ही है, इसलियें विलेव्यू से फ्रीड्रिकस्ट्रस के स्टेशन पर आना जाना बराबर रहता था। स्टेशन से उतर कर उन्टरडेनलिडन के बाजार के पास पहुंचने पर मुझे ऐसा प्रतीत होने लगता कि मानों वर्षा से उमड़ी हुई किसी नदी के किनारे पर खड़ा हूं। आखें खराब होने के कारण हमेशा किसी मोटर के नीचे दब जाने का अन्देशा लगा रहता था, इसलिये फ्रीड्रिकस्ट्रास से जाते जाते जब मैं उन्टरडेनलिडन के बाजार के पास पहुंचता तो वहाँ कोने पर खड़ा होकर मैं सदा किसी गुजरने वाले की आड़ की तलाश में रहता था और जब लोग गुजरने लगते तो उनके साथ फौरन निकल जाता था। प्रत्येक बार आनेजाने में, इस बाजार को गुजरने के बाद, मुझे मानसिक निश्चिन्तताई (R-lief) मालूम होती थी, इसीसे पाठक मेरे इस बाजार को न भूलने के कारण को भली प्रकार समझ सकते हैं।

शहर के वृहत् विस्तृत बगीचे 'टियरगार्टेन'से यदि हम लिडन

की तरफ आयें तो हमें सामने ब्रेन्डेनबर्ग दरवाजा दिखलाई देगा। यह लिंडन की पश्चिमी सीमा है। यहाँ उन्टरडेन लिंडन खतम हो जाता है। यह दर्वाजा यूनान के एथन्स शहर के एक दरवाजे की नकल पर सन १७९१ में बनाया गया था। इसके बीच में से गुजरने के पांच रास्ते हैं, जो डौरिक ढंग के स्तूपों से विभक्त हैं। यह दरवाजा पत्थर का बना है। इसकी ऊंचाई ८५ फ़ीट और चौड़ाई ७०५ फ़ीट है। इस दरवाजेसे निकल कर यदि हम दाहिने हाथ की तरफ जाय तो रीस्टाह, जर्मनी के पार्लिमेण्ट भवन, के पास पहुंच जायगे। दरवाजे से सीधे जाँय तो टीयर गारटेन की सैर कर गे।

आइये पाठक, इस दरवाजे से निकल कर पार्लिमेन्ट भवन की तरफ चलें। बचिये, सामने से मोटर आता है, आगे देखिए, दाहिने हाथ की तरफ से बिजली की गाड़ी आरही है, इसे निकल जाने दीजिए। अच्छा अब हमको सीधा बांये हाथ के इन वृक्षों के साये में चलना होगा। वह देखिये सामने रीस्टाह का विशाल भवन है, इसी के अंदर बैठ कर जर्मनी के प्रजातन्त्र राष्ट्र के प्रतिनिधि अपने दुखी देश की वर्तमान समस्याओं पर विचार करते हैं। बाँये हाथ की ओर घूम चलिये। आज हम इटेलियनशिल्प-कलाके उत्कृष्ट ढंग की बनी हुई इस इमारत को देखने के लिये नहीं आये, इसे तो हम फिर कभी किसी मौके पर देख सकते हैं, आज हमें एक मुख्य चीज़ देखनी है, क्योंकि सुनते हैं कि शायद इसे जर्मनी के कम्यूनिस्ट लोग फ्रान्स की गवर्नमेण्ट के दबाव में

आकर नष्ट भ्रष्ट करवाये । यह देखिये सामने के ऊचे गोलाकार प्लेटफार्म पर ऊचा स्तूप दिखाई देता है यही जर्मनी का अत्यन्त विख्यात और ससार में अपने ढग का अनोखा विजय-स्तूप है। हमें इसे ही देखना है ।

पत्थर के इस गोलाकार जीने की आठ सीढ़ियाँ चढ़ कर हम चबूतरे पर पहुंचते हैं। इसी के बीचों बीच चौकोना विजय स्तूप दो सौ फीट ऊचा खड़ा है। इसका उद्घाटन सन् १८७३ के सेप्टेम्बर मास में हुआ था। सन् १८७० में जो भयकर पराजय जर्मनी ने फ्रान्सीसियों को दी थी, उसीका यह स्मारक है। यह वृहत् स्तूप गहरे लाल पत्थर और पीतल का बना हुआ है और बड़ा प्रभावोत्पादक है। इस स्तूप का आधार भूत नीचे का चौकोना भाग बाईस फ़ीट ऊंचा है और इसके चारों तरफ पत्थर की दीवार में पीतल के ऐतिहासिक चित्र उभरे हुए हैं। पूरब की दीवार में सन् १८६४ के उस युद्ध का चित्र है जो जर्मनी और डेनमार्क के बीच हुआ था, उत्तर की तरफ की दीवार पर आस्ट्रिया और जर्मनी के दर्मियान के आखिरी युद्ध का चित्र उभरा हुआ है। यह घमासान लड़ाई सन् १८६६ में हुई थी। पश्चिम की दीवार पर फ्रान्सीसी जातिके हृदयको पाश पाश करने वाला दृश्य है। सन् १८७० में जो पराजय फ्रांस के बादशाह नैपोलियन तीसरे को जर्मनों के हाथ से हुई थी उसी का दृश्य निपुण कारीगर ने दिखलाया है। विजयोन्मत्त जर्मन सेना पेरिस में प्रवेश करती हुई दिखाई गई है। दक्षिणी दीवार पर फादरलैन्ड (Vater Land)

इन खपरों के नीचे विजयी जर्मन सेना का अपनी जन्मभूमि को लौटने का दृश्य दिखलाया गया है। ऊपर दृष्टि डालने से दर्शक को तीन कतारें तोपों की दिखलाई देती हैं। ये डेनमार्क, आस्ट्रिया और फ्रांस से जीती हुई तोपें हैं। स्तूप के ऊपर शिखर पर अड़तालीस फीट लम्बी विजयादेवी की मूर्ति है, जिसके दाहिने हाथ में विजयमाल और बायें हाथ में क्रास है। एक सौ इक्यावन फीट ऊंचे इस स्तूप के चबूतरे पर चढ़ने से नगर का दृश्य दिखाई देता है।

जिस समय मैंने इस स्तूप को देखा और उसके चारों ओर घूमकर दीवारों पर उभरे हुये चित्रों पर गम्भीरता से विचार किया तो मेरे हृदय में विचित्र भावों का उदय हुआ। नीचे के चबूतरे पर खड़ा हुआ मैं सोच रहा था, "बावन वर्ष हुए कि जर्मनी ने फ्रांस को बुरी तरह हराया था, फ्रांस का बच्चा बच्चा जर्मनी द्वारा किये हुये अपमान से व्यथित था, जर्मनी के प्रधान मन्त्री बिस्मार्क ने गर्व में आकर फ्रांस को नीचा दिखाने के लिये इस स्तूप को खड़ा किया। बिस्मार्क अपने छोटे ख्याल में यह समझता था कि जर्मन जाति सदा बलशाली रहेगी, उसने यह न सोचा कि द्वेष द्वेष से नहीं मिटता बल्कि प्रेम से मिटता है, उस अदूरदर्शी और अभिमानी जर्मनको क्या मालूम था कि पचासवर्ष बाद यही फ्रांसीसी जाति उसके द्वारा किये गये अपमान का भयंकर बदला लेगी और शक्तिशाली जर्मन राष्ट्र को मिट्टी में मिला देगी। यह सामने बिस्मार्क की मूर्ति खड़ी है। अगर इस

बेजान मूर्ति में जान पड़ जाय और यह आज जर्मनी की दुर्दशा देखे तो उसकी आखों में आसू भर आवें और वह अपने किए हुए पापों का प्रायश्चित्त करे, पचास वर्षों के घाव उसके बोए हुए द्वेष के बीज का फलस्वरूप रूह्र का हत्याकाण्ड हुआ, जो भूल बिस्मार्क ने की थी वही अब फ्रांस का राष्ट्रसचिव पाइनकेयर कर रहा है। क्या संसार का ऐसा ही नियम है? क्या भगवान बुद्ध और हजरत ईसामसीह के विचार कोरे लिफाफे ही हैं! क्या वे खाली कानों में प्यारे लगने वाले शब्द ही हैं? क्या संसार इसी प्रकार पशुबल के आधार पर चलता रहेगा?" ऐसे ही विचारों को सोचता हुआ मैं उस चबूतरे से नीचे उतर गया। उन विचारों ने मेरे हृदय को पकड़ लिया। मैंने अपने मन में कहा कि यदि संसार पशुबल के आधार पर खड़ा है तो फिर हम अपने लोगों को नर्म क्यों बनावें। हम भी हिन्दुओं को संसार के प्रचलित नियम के अनुसार ऐसा बलशाली बना दें कि कोई उन पर अत्याचार न कर सके। कम से कम हमारे देश के लोगों को ऐसा तो जरूर बन जाना चाहिए कि वे पशुबल रखने वालों का अच्छी तरह से मुखमर्दन कर सकें, केवल पशुओं की तरह बदला लेने की भावना उनमें नहीं आनी चाहिए। इस प्रकार विचार करता हुआ मैं टियर गारटेन की ओर चला गया। रास्ते की गली में दोनों तरफ जर्मन बादशाहों और उनके वीरों की मूर्तियां गली के आखिर तक चली गई हैं, पर मैं उन सब का ख्याल छोड़ अपने विचारतरंग में डूबा हुआ टियर गारटेन के प्रसिद्ध बाग़ के अन्दर घुस गया।

लन्डन में जैसे हाइड पार्क है वैसेही बर्लिन में टियर गारटेन, लेकिन बर्लिन का बाग़ बड़ा और अधिक रम्य है। यह ब्रेंडेन बर्ग दर्वाज़े से लेकर चारलाटन बर्ग तक चला गया है और इसमें छ सौ बीस एकड़ भूमि है। शाम के समय स्त्री, पुरुष और बच्चे, शहर के चारों तरफ़ से इसमें घूमने के लिए आते हैं। बाग़ बहुत बड़ा होने के कारण इस में बहुत से एकान्त स्थान हैं। रात के समय इन दूरस्थित एकान्त स्थानों में जाना भयपूर्ण है। लिंडन से घूम कर आने वाले परदेशी लोग बहुत बड़ी संख्या में यहां शाम को घूमने आते हैं, बाग़ में जल–विहार करनेके लिये नहर है, बीच में जंगल खूब घना है। कहते हैं कि यह किसीकाल में मृगया का स्थान था। विल्लेव्यू में जहां मैं रहता था, वहां से टियर गारटेन बहुत निकट होने के कारण मुझे घूमने का बड़ा आराम था। भाषा न जानने के कारण मैं लोगों की बात कुछ नहीं समझ सकता था, इसलिये मैं सदा अंग्रेज़ी जानने वाले जर्मनों की तलाश में रहता था। यहां पर क्वेकर्स (Quakers) लोगों की एक सोसाइटी है जिस के मेम्बर अमरीकन और अंग्रेज़ हैं। यह सोसाइटी ग़रीब जर्मन विद्यार्थियों की सहायतार्थ खोली गई है। यहां पर प्राय अंग्रेज़ी जानने वाले जर्मन विद्यार्थियों से मेरी भेंट हो जाया करती थी। उनके साथ मैं कभी कभी इस बाग़ में तथा अन्य स्थानों में घूमने जाया करता था। सचमुच ऐसे बाग़ शहर के अन्दर नगर निवासियों के लिये एक बड़ी बर-कत हैं। हिन्दुस्तान के शहरों के बनाने में इन बाग़ों का कुछ भी

ख्याल नहीं किया गया। पुराने बादशाह लोग प्रजा की बन्दुरुस्ती का कुछभी ध्यान नहीं रखते थे, वे केवल निपट स्वार्थ का जीवन व्यतीत करना जानते थे।

× × × ×

अब ज़रा बर्लिन में रहने वाले भारतीयों के विषय में एक दो बातें और सुन लीजिये। जर्मनी में अधिक संख्या भारतीय विद्यार्थियों की है। जब जर्मन मार्क सस्ता हुआ तो ग़रीब हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों ने जर्मन जाने का विचार किया। जिन बेचारों के नाम ख़ुफ़िया पुलिस की मेहरबानी से काले रजिस्टर में लिखे हुए थे, जिन्होंने कभी पिछले जन्म में भी नौकरशाही के विरुद्ध छींक मारी थी, उनको जर्मनी जाने का पासपोर्ट नहीं मिला, जो सोलह आना राजभक्त समझे जाते थे, जिन्होंने कभी पुलिस का रास्ता नहीं काटा था, ऐसे लोग बहुत जल्द पासपोर्ट पा गये और जर्मनी पहुंच गये। बर्लिन में मेरे समय में ऐसे विद्यार्थियों की संख्या सौ से ऊपर होगी। ये लोग सस्ते दिनों में तो ख़ूब मौज उड़ाते रहे मगर जब महगी के दिन आये तो बड़ी मुश्किल में पड़े। इनमें से कई तो जर्मनी छोड़कर अमरीका चले गये और जो रहे वे घर से अधिक रुपया मंगवा कर किसी प्रकार अपना काम चला रहे हैं। दूसरी प्रकार के भारतीय ऐसे हैं जो पोलीटिकल कारणों से मजबूरन वहां पड़े हुए हैं, जिनको रोटी का सवाल हमेशा सताता रहता है, जो बेचारे अपने अपने प्रकाश के अनुसार देशसेवा भी करते रहते हैं। इनमें

से कइयों ने जर्मन औरतों से विवाह कर लिया है। ऐसे एक भारतीय बन्धु पण्डित अवधेश लट्टा हैं। ये यहां व्यापार करते हैं। इनकी जर्मन स्त्री बड़ी सुशीला है और इनके काम में बड़ी मदद देती है। इनकी एक कन्या है जिसका नाम लट्टा जी ने सावित्री रक्खा है। दूसरे एक सिक्ख भाई हैं जिनकी जर्मन स्त्री उनकी दुकान का सारा काम सम्भालती है और व्यापार कार्य्य में बड़ी पटु है। इन लोगों ने यहां विवाह तो कर लिया है और बस भी गये हैं पर उनका हृदय भारतवर्ष की ओर रहता है, अगर उन्हें आज भारत लौटने का मौका मिले तो वे सहर्ष भारत लौट आयें। तीसरे प्रकार के कुछ भारतीय ऐसे हैं जो व्यापारी हैं। ये बेचारे दौड़ धूप करके अपना गुज़ारा चला रहे हैं। चौथी प्रकार के भारतीय कुछ मुसलमान हैं जो धर्मान्धता की आड़ में बेचारे ग़रीब हिन्दुस्तानी मुसलमानों का रुपया ठगकर बर्लिन में मसजिदें बनाने की फिक्र में हैं। ये लोग यहां मौज मारते हैं। इनकी दो पार्टियां हैं एक पार्टी क़ादियानी मिर्ज़ा की और दूसरी साधारण मुसलमानों की। यह दोनों पार्टियां यहां बर्लिन में अपनी 'अढ़ाई ईंट की' अलग अलग मसजिदें बनाना चाहती हैं और दोनों एक दूसरे को तरह तरह के इल्ज़ाम लगाती हैं। मेरे समय में जब क़ादियानी लोगों ने अपनी मसजिद की ईंट रक्खी। तो वहां खासा बखेड़ा खड़ा हो गया और मिरज़ाइयों को जर्मन पुलिस की सहायता लेनी पड़ी थी। इसीलिये मैं मज़हबी दीवानापन का कट्टर शत्रु हो गया हूं। बेचारे ग़रीब मुसलमान अपना पेट काट काट कर इन लोगों के पास बर्लिन में पौण्ड

भेजते हैं और वहां उस धन का यह दुरुपयोग ! इस रुपये से यदि हम अपने योग्य मुसलमान विद्यार्थियों को जर्मनी में पढ़ने भेजें तो देश का कितना उपकार हो। इन स्वार्थी मौलवियों और मुल्लाओंके कारण ही गरीब हिन्दू मुसलमान आपस में लड़ते रहते हैं। अतएव हमारा पहिला काम यही है कि हम अपनी गरीब जनता को मजहबी लुटेरों के हाथों से बचावें और झूठे विश्वासों को दूर कर सच्ची देश भक्ति का प्रचार अपने लोगों में करें।

बर्लिन में मैंने एक बात विचित्र देखी। यहाँ मुर्दों को जलाने का एक स्थान है। एक भारतीय देशभक्त यहां मर गया। उसको जलाने के लिये हम लोग उसे उस श्मशान-गृह में ले गये। वहा जाकर देखा तो मालूम हुआ कि मुर्दे को जलाने का रिवाजजर्मनी में खूब लोकप्रिय हो रहा है। श्मशान-गृह में बड़ मुश्किल से मुर्दा जलाने की बारी आती है और बहुत थोड़े समय में काम खतम करना पड़ता है। ऐसा मालूम होता है कि अगली शताब्दी में योरुप की आम जनता अपने मुर्दों को जलाने लगेगी और मुर्दों को दफ़ाने की कुप्रथा का अन्त हो जायेगा।

अन्त में मैं यह बतला देना भी उपयोगी समझता हूँ कि जिस देश की भाषा मनुष्य नहीं जानता वहा की सैर का आनन्द उसको नहीं मिल सकता। रेल में बैठे हुए, गली में घूमते समय बागों में टहलते वक्त, अपने इर्द गिर्द के आदमियों की बातें, उनका हंसी मजाक, उनके दिलचस्प वक्तव्यों को न समझना, और मूर्खों की तरह चुपचाप रहना बड़ा बुरा मालूम होता है। मनुष्य

खाली पहाड़ी नजारें, सुन्दर गलियां और भव्य भवनों को देख कर ही संतुष्ट नहीं होता, असली चीज जानने के योग्य तो देश की सभ्यता होती है। भाषा के ज्ञान के बिना कोई भी विद्वान् पुरुष किसी देश के सैर से उपयुक्त लाभ नहीं ले सकता। यों पागलों की तरह इधर उधर घूम आना और बात है, इससे पुरुष अनुभवी और व्युत्पन्न नहीं हो सकता, इसलिये मैं अपने प्रेमियों से सानुरोध निवेदन करूंगा कि यदि वे जर्मनी जावें तो पहले जर्मन भाषा का थोड़ा ज्ञान अवश्य कर लें, कम से कम इतना कि जिससे वे किसी की बात समझ सकें और अपनी जरूरतें समझा सकें।

योरुप जाने वालों के सुभीते के लिए मैंने एक अलग पुस्तक जर्मन फ्रेञ्च और इटालियन शब्दों की तय्यार की है, उसे मैं बम्बई में छपवाऊंगा। इस पुस्तक के साथ उस की सामग्री जोड़ने से दाम अधिक हो जाता। दूसरी बात यह कि जिन्हें योरुप जाना नहीं है वे क्यों उसका दाम देवें, यही सोचकर उसे पृथक् छपवाने का निश्चय किया है।



चतुर्थ खण्ड



इक्कीसवाँ अध्याय

बर्लिन से स्टाकहोल्म

प्रत्येक भूमि का अपना अपना प्रलोभन होता है। भारतवर्ष के लोग समझते होंगे कि स्वीडन और नार्वे इतने ठंढे देश, जहाँ अधिकांश महीनों में खूब हिम पड़े, वहां भला देखने योग्य क्या वस्तु होसकती है। परन्तु ऐसी बात नहीं। जून के महीने में संसार के दूर दूर देशों के यात्री स्वीडन घूमने जाते हैं और वहां के अद्भुत प्राकृतिक दृश्य को देखते हैं। वह दृश्य क्या है? इस दृश्य को मिडनाइट सन् (Midnight Sun) अर्थात् मध्य-निशा भानु का दृश्य कहते हैं। ग्रीष्म ऋतु में स्वीडन के अत्यन्त उत्तरीय भाग में कई सप्ताह तक सूर्य दिन भर क्षितिज से ऊपर रहता है और बहुत थोड़ी देर के लिये छिपता है। एक स्थान पर तेईस घंटे से अधिक समय का दिन होता है अर्थात् सूर्य मुश्किल से पौन घंटे के लिये अस्त होता है। इस प्रकार गर्मी की ऋतु में बड़े लम्बे दिन स्वीडन में आते हैं, पर उन दिनों सूर्य हमारे देश की तरह सिर पर नहीं आता बल्कि क्षितिज में घूमता हुआ दिखाई देता है, चक्राकार होने के कारण दिन भी बड़े हो जाते हैं, पर यह दृश्य देखने ही योग्य होता है।

दूसरी अद्भुत चीज इन उत्तरीय देशों में जो देखने की है वह है विद्युत् प्रवाह जिसका वर्णन करना मनुष्य की शक्ति से परे है। अन्धेरी रातों में जब खूब जाड़ा पड़ता है, जब पारा शून्य से तीस चालीस डिग्री नीचे उतर जाता है, तब उत्तरीय दिशा में नैसर्गिक छटा का विस्मयजनक चित्र देखनेमें आता है। इस प्राकृतिक दृश्य को अंग्रेजी में Aurora borealis कहते हैं, हिन्दी में इस विद्युत्प्रवाह कहेंगे बिजली की रंग बिरंगी किरणों के प्रकाश से उत्तरीय दिशा प्रकाशितहो उठती है और आकाश जगमग जगमग करने लगता है। यह केवल उत्तरीय भूभाग का दृश्य है, इस लिए प्राकृतिक सौन्दर्य्य के हजारों उपासक फरवरी के महीने में यह अद्भुत दृश्य देखने स्वीडन जाते हैं। स्वीडन में पृथ्वी का वह भाग भी है जहां छ महीने की रात और छ महीने का दिन होता है। यह भूमि लापलैण्ड है।

बस इन्हीं दोनों दृश्यों के देखने की मेरी बड़ी प्रबल इच्छा थी। ग्रीष्म ऋतु तो गुजरगई थी, इसलिये मैंने सोचा कि शायद विद्युत् प्रवाह मेरे देखने में आजाए, इस लिये मैंने हेमबर्ग होकर स्वीडन जानेका निश्चय किया। हेमबर्ग योरुप का अत्यन्त प्रसिद्ध तिजारती शहर है। जर्मनीका तो इसे कमाऊ बेटा कहना चाहिए। यहीं से बड़ी बड़ी कम्पनियों के जहाज देश देशान्तरों और द्वीप द्वीपान्तरों को जाते हैं। जर्मनी का सारा व्यापार यहीं से दुनिया के साथ होता है। बर्लिन से रेल द्वारा इसका फासला उत्तर-पश्चिम की ओर एक सौ अटहत्तर मील है। करोड़ों रुपये का

माल इस बन्दरगाह से उतरता चढ़ता है और लाखों मजदूर इस शहर की तिजारत से टुकड़ा कमाते हैं।

यहां तमाकू, रासायनिक वस्तुएं, रबर और घरलू सामान तय्यार करने वाली फैक्टरियां हैं। बड़े बड़े जहाज यहां बनाये जाते हैं और शिल्प कला के अस्त्र, शस्त्र, फलों का मुरब्बा, कपड़ा, कागज, चीनी और शराब तय्यार करने वाले कारखाने भी यहां पर हैं। यह शहर आधुनिक वैज्ञानिक सुखों से सुसज्जित है। हालांकि यह शहर बहुत पुराना है लेकिन हेमबर्ग के लोग संसार की गति के साथ चलने वाले हैं। उन्होंने अपने शहर को तोड़ फाड़ कर उसे आधुनिक शहर बना लिया है। हिन्दुस्थान में तो लोगों को नयी चीज़ से डर लगता है और हमारे शहर की म्युनिसिपेलटियां अपनी आमदनी का बड़ा भाग अब तक श्वेतांग-प्रभुओं की सेवा में खर्च करना ही अपना अहोभाग्य समझती रही हैं परन्तु इसके विपरीत स्वतन्त्र देशों के नगरों की आमदनी जन साधारण के सुख के लिये नगर की उन्नति करने में खर्च की जाती है।

बर्लिन से मैं प्रात काल की गाड़ी से हेमबर्ग रवाना हुआ। जहां मैं रहता था वहां से हेमबर्ग जाने का स्टेशन निकट ही था। दो भारतीय बन्धु मुझे स्टेशन पर छोड़ने के लिये आये। हेमबर्ग में मैं आठ दस दिन रहा। यहां पर पच्चीस तीस भारतीयों की दुकानें हैं जो माल भेजने और मंगवाने की कमीशन एजन्सी का काम करते हैं। इनमें से कई सज्जनों की आर्थिक दशा अच्छी है। भाई डी० एन० कपूर का काम अच्छा चलता है। यह यहां,

आप बड़े मिलनसार, देशप्रेमी आर्यसमाजी हैं। वे अपनी शक्ति अनुसार यथायोग्य भारतीय विद्यार्थियों की सहायता करते हैं। मैं एक होटलमें जाकर ठहरा। यहां आजकल बर्फ पड़रही थी इस लिये कुछ अधिक देख न सका। मैं अपने साथ एक जर्मन नवयुवक को स्वीडन ले जाना चाहता था ताकि वह स्वीडनमें मेरे दुभाषिये का काम करे। तीनदिन लगातार जूतियां चटखाने परभी उस बेचारे को स्वीडन जाने की आज्ञा स्वीडिश अधिकारियों से नहीं मिली। वह ग़रीब लड़का बड़ा दुखी हुआ। मैं उसके दुःख को भली प्रकार समझ सकता था, क्योंकि हिन्दुस्तान में हम लोग तीस करोड़ भारतवासी क़ैदियों की तरह हैं, जो नौकरशाही की आज्ञा के बिना अपने मुल्क से बाहर आ जा नहीं सकते। भारतवासी नौकरशाही की आज्ञा से किसी दूसरे देश में जाकर सैर कर सकते हैं। यों तो योरुपीय महाभारत के बाद सभी बड़े छोटे देशों में पास पोर्ट का नियम कर दिया गया है परन्तु इन देशों के लोगों को भारतवासियों की तरह पासपोर्ट के लिये ऐसी दिक्कतें नहीं उठानी पड़तीं और न उन्हें निरंकुश इन्कार ही सुनना पड़ता है।

मैंने स्वीडन जाने की तय्यारी करली। इन दिनों जर्मनी से बाहर जाने वाले विदेशियों की, सीमा प्रान्त पर जर्मनी छोड़ते समय खूब तलाशियां होती थीं पर मेरे पास तो कुछ था ही नहीं, इसलिए मैं निश्चिन्त होकर हेमबर्ग से स्टाकहोल्म जाने वाली गाड़ी में बैठ गया। यह गाड़ी साम्निट्स होकर स्टाकहोल्म जाती

है। और इसमें शयनगाड़ी भी लगी रहती है बर्लिनसे आने वाले मुसाफिर भी सासनित्स होकर ही स्टाकहोल्म जाते हैं। ससनित्सके पास पहुँचकर जर्मनी की हद खतम हो जाती है। यहा रेल गाडी को उठा कर अग्निबोट में लाद देते हैं, और वह अग्निबोट उस सारी रेलगाड़ी को स्वीडन के किनारे पर ले जाकर उतार देता है। सासनित्स से बाल्टिक सागर जर्मनी को स्वीडन से अलग करता है। स्वीडन जर्मनी का निकटस्थ पड़ौसी है इसलिये वहा के लोगों की सहानुभूति जर्मनी के साथ है और स्वीडिन भाषा एक प्रकार से बिकृत जर्मन भाषा है। यहा के लोग भी प्राय जर्मनी से आकर बसे हुए हैं। मैं मध्याह्न के समय ही हैमबर्ग मे गाड़ी में सवार हुआ था, दूसरे दिन सबेरे स्टाकहोलम पहुँच गया। रेल में एक भलेमानस गोरे से भेंट होगई। वह मुझे मेरे निर्दिष्ट स्थान पर लेगया। ईश्वर जाने वह कौन था ?

स्टाकहोल्म में स्टेशन के पास ही एक होटल है। उसका पता मैं बर्लिन से ले आया था, उसी होटल में आकर मैं ठहरा। उसका प्रबन्ध करने वाली लेडी भारतीयों से बड़ा प्रेम करती है; भारतीयों की खातिर उसने बलिदान भी किया है। उसके होटल में मुझे बड़ा आराम मिला। मैं यहां दस बारह दिन रहा। विशुत प्रवाह देखने के लिये मैं बड़ा उत्सुक था, पर पूछने पर पता लगा कि दिसम्बर का महीना उन नैसर्गिक दृश्य की छटा देखने के अनुकूल नहीं होता, क्योंकि अभी काफी सर्दी नहीं हुई थी। भला मैं फरवरी तक डेढ़ दो महीने यहां कैसे टहर सकता था,

इसलिये लाचार होकर मैंने स्वीडन से चलने का निश्चय किया और सोचा कि स्टाकहोलम से सीधे बर्लिन होकर वीएना (आस्ट्रिया) चलना चाहिये। इसी बीच में मुझे लाला हरदयाल जी का पता मिल गया। मेरी उनसे मिलने की बड़ी इच्छा थी क्योंकि बहुत मुद्दत से उनसे मुलाकात नहीं हुई थी। हरदयाल बेचारे को बर्लिन के एक दो क्रांतिवादियों ने किसी काल में बहुत सताया होगा, इसलिये वे उस भारतवासी से, जो बर्लिन होकर आया हो, मिलते हुए डरते थे। दूसरे उन्होंने अपने कुछ लेखों में बहुत सी अयड बयड बातें भारतीय सभ्यता तथा भारतीय साहित्य के विषय में लिखी हैं और अंग्रेजी भाषा तथा अंग्रेजी संस्थाओं की बड़ी प्रशंसा की है, अर्थात् जो हरदयाल सन् १९१२ में उत्तरीय ध्रुव में खड़ा था और उसी के गीत गाता था वही हरदयाल सन् १९१९ में एकदम पलट कर दक्षिणी ध्रुव में जाकर खड़ा होगया और उसी के गीत गाने लगा। विचारों का परिवर्तन चिन्ताशील मनुष्यों में हुआ ही करता है, परिवर्तन जीवन है पर सब चीजें मर्यादा की अच्छी लगती हैं, मर्यादा से बाहर की 'अति' को अस्वाभाविकता कहते हैं। लाला हरदयाल जी ने अपने छोटे से, किन्तु अत्यन्त क्रांतिकारी, जीवन में इस प्रकार का अस्वाभाविक परिवर्तन अपने विचारों में प्रकट किया है। ये उच्चकोटि के प्रतिभाशाली, प्रखर बुद्धि के पुरुष हैं, फ्रैंच, जर्मन, इंगलिश औरस्वीडिश भाषाओं के ये मर्मज्ञ पंडित हैं, भाषायें उनकी दासियाँ हैं उनसे काम लेने में वे सिद्धहस्त हैं, पर उनके अन्दर 'अति' का भयङ्कर दोष है। यदि उनमें यह दोष न होता

तो वे राजनीतिक-क्षेत्र में भारतीय नेताओं के सिरताज होते, पर वे बीच का रास्ता पकड़ना नहीं जानते, ऐसे पुरुष अन्यत्र क्रांतिकारी समयमें अवसर मिलने पर अद्भुत चमत्कार कर जाते हैं पर उनसे रचनात्मक कार्य नहीं हो सकता। उसके लिये बड़े संयम की आवश्यकता है। वह संयम भगवान ने लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी को ही दिया है। लाला हरदयालजी की इच्छा स्वीडन में ही निवास करने की है। वे वहीं रहकर अपना जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। उनका निर्वाह व्याख्यानों द्वारा होता है। स्वीडन के स्कूलों में तथा अन्य सोसाइटियों के सामने वे भिन्न भिन्न विषयों पर व्याख्यान देते हैं और उनकी आमदनी से अपना गुजारा करते हैं। अपनी आर्थिक दशा अच्छी होने पर वे अपनी स्त्री और लड़की को दिल्ली से स्वीडन में बुला लेंगे और यदि कभी उनको पासपोर्ट मिल सका तो वे अपनी जन्मभूमि में आकर अपने देशवासियों के दर्शन भी करेंगे। ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने उनके 'जर्मनी में चौदह मास' नामक पुस्तक की हजारों प्रतियाँ छपवाकर लोगों में बटवायीं और अपना मतलब निकाल लिया, परन्तु वह गवर्नमेन्ट लाला हरदयाल को पासपोर्ट देने के लिये तय्यार नहीं। इससे एक बात स्पष्ट है। राजनीतिक क्षेत्र में काम करने वाले लोगों को यह याद रखना चाहिये कि अंग्रेजी राजनीति में हृदय को बिलकुल स्थान नहीं है। उसके सारे नियम निपट स्वार्थ पर अवलम्बित हैं। सहृदय 'पुरुष अपने अहिंसा के बल से इस राजनीति को पछाड़ देगा, इसमें मुझे सन्देह है। यदि महात्मा गांधीजी अपने

इस नये तजरुबे में कामयाब न हुए और ये हृदय शून्य नौकर-शाही को अपने सत्य सिद्धान्तों द्वारा पराजित कर हिन्दुस्तान को स्वराज्य न दिला सके तो लोकमान्य तिलकजी का सिद्धान्त सदा के लिए निर्विवाद सिद्ध हो जायगा।

हां मैं लाला हरदयाल जी के विषय में कह रहा था। उनकी हार्दिक इच्छा है कि वह स्वीडन में बैठे हुये हिन्दी साहित्य का भण्डार भरें और अपने विचारों को हिन्दी उर्दू पुस्तकों द्वारा जन साधारण में फैलावें। वे अपनी विद्या, योग्यता और अध्ययन का लाभ अपने देशवासियों को देना चाहते हैं और राजनीति, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि उपयोगी विषयों पर पुस्तकें लिख कर उनके सुलभ संस्करण प्रकाशित करवा जन साधारण में जागृति पैदा करना चाहते हैं। वे निष्कामभाव से अपने दुःखी देश की जनता की सेवा करने के उत्सुक हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरे देशभक्त पुस्तक प्रकाशक लाला हरदयाल जी की योग्यता से अपने देश के लोगों को लाभ पहुंचायेंगे और उनकी पुस्तकें प्रकाशित कराने का बड़ा अच्छा प्रबन्ध करेंगे।

अगले अध्याय में मैं लाला हरदयाल जी के अंगरेजी पत्र, जो उन्होंने मुझे भेजे हैं, अपने भाइयों के लाभार्थ प्रकाशित करता हूं ताकि उनके प्रेमी लालाजी के दिल के भावों को जान सकें। उनके पढ़ने से लाला हरदयाल जी की मानसिक अवस्था का पता चलता है। साथ ही अपने देशवासियों की

कृतघ्नता का चित्र भी सामने आ जाता है।

मैं चूंकि बर्लिन से आया था और उनको मेरे योरुप आने की कुछ भी सूचना न थी, इसलिये मेरे आकस्मिक स्टोहन आजाने से वे घबरा गये। उन्होंने समझा कि शायद मैं बदला लेने वाले क्रांतिकारियों की ओर से भेजा हुआ आया हूं। लाला हरदयालजीके कारण बहुतसे अनपढ़ आदमियों की जायदादें जब्त होगई, बहुत से फासी पर लटकाये गये, इसकारण हरदयाल जी के दिल में इस प्रकार के भावों का होना कोई ताज्जुब की बात न थी। मैं सन् १९१२ से लेकर सन् १९१९ तक की घटनाओं पर दृष्टि डाल कर हरदयाल जी के हृदय की अवस्था को भली प्रकार समझ सकता हूं। जो लोग मध्यम पथ का अवलम्बन नहीं करते, जो आंधी और बगोले की तरह अपने जीवन चक्र को चलाते हैं, सफलता न मिलने पर उनकी कमर टूट जाती है, वे थक कर बैठ जाते हैं और निराशा भरी दृष्टि से अपने पिछले वर्षोंही के कृत्यों का सिंहावलोकन करते हैं, उस समय उनकी छाती फटने लगती है और वे कायर हो जाते हैं। भाग्यवान हैं वे जो 'अति' के वशीभूत होकर किसी काम में सफलता प्राप्त करलें, या सफलता के संग्राम में बलिदान हो जाय, पर वे बड़े अभागे हैं जो सफलता न मिलने पर अपनी की हुई बरबादी के रोमांचकारी दृश्यों के साक्षी बनते हैं। लाला हरदयाल जी की ठीक यही दशा है। मैं उनकी गलतियों के कारण उनका त्याग नहीं करूंगा। वे योग्य पुरुष हैं, अपनी योग्यता से वे आने वाली

सन्तान के लिये बड़े उपयोगी साहित्य की रचना कर सकते हैं। हम ऐसे अमूल्य लाभ से देश को वंचित क्यों करें। स्वीडन बड़ा अच्छा देश है। यहाँ के लोग भारतीयों से बड़ा प्रेम करते हैं और स्वभाव बड़े ईमानदार हैं। ऐसे देशमें रहने वाले लाला हरदयालजी से हमें अपने साहित्य की वृद्धि करानी चाहिए। सभी भाइयों के लाभार्थ मैं लाला जी का पता नीचे लिखता हूँ—

Professor Har Dyal
Molnlycke
Sweden

आशा है कि लाला हरदयाल जी के प्रेमी और उनकी विद्या से लाभ लेने वाले सज्जन उनसे पत्र व्यवहार करेंगे ताकि भारत को एक खोया हुआ रत्न मिल जाय। मैं हिंदी के समाचार पत्रों और पत्रिकाओं के विद्वान् सम्पादकों से निवेदन करता हूँ कि वे लाला हरदयाल जी के पास अपने पत्र और पत्रिकायें बराबर भेजें ताकि हिन्दी की पुस्तकें लिखने में लाला जी को शब्दों की तलाश करने में दिक्कत न रहे। अपना प्यारा देश छोड़े हुए उन्हें बहुत वर्ष हो गये, इसलिये शुद्ध भाषा लिखने के हेतु भाषा का निरन्तर अभ्यास करना उनके लिये आवश्यक है।

× × × ×

मैंने स्वीडन छोड़ने की तय्यारी करली। मेरे यहा के प्रेमी मित्रों का आग्रह था कि मैं फरवरी में फिर स्वीडन आऊं ताकि विद्युत्-दाह का अलौकिक दृश्य देखूं, पर मेरी इच्छा भारत लौट

जाने की थी। स्टाकहोल्म के एक प्रसिद्ध डाक्टर को मैंने आँखें दिखलाई। फिर जर्मन कौंसिल के पास आकर जर्मनी जाने का पासपोर्ट लिया। स्टाक होल्म से विएना तक का दूसरे दर्जे का टिकट खरीद लिया। प्रेमीजन मुझे छोड़ने के लिये स्टेशन पर आए। रात को आठ बजे के बाद गाड़ी स्टाकहोल्म से चली। अपने स्वीडिश मित्रों को एक बार फिर कभी विद्युत् प्रवाह देखने के लिये स्वीडन आने का वचन दे, उनसे प्रेमपूर्वक विदा मांग, मैं सोने वाले कमरे में चला गया।

— o —

बाइसवाँ अध्याय

लाला हरदयाल जी के पत्र

लाला हरदयाल जी ने मेरे पास कई पत्र भेजे थे। उनमें से तीन पत्र मैं प्रकाशित करता हूं। पहले अंग्रेजी पत्र सिलसिलेवार देकर फिर उसी प्रकार उनका तरजुमा हिन्दी में दिया गया है।

Molnlycke (Sweden)
12th Dec. 23

My dear Swami Satya Deva ji,

Thanks for your kind letter I shall reply to your questions in order.

(1) I do not wish to work with the revolutionary Indian nationalists of Berlin and California. I do not think they can accomplish anything

I approve of the Home Rule party, which aims at self-government for India within the British Empire, like Ireland I have set forth my attitude full in some articles written in 1919

(2) Within the Home Rule party, I work only for the poorer classes, the farmers and the labourers I do not wish to work for or with rich men—landlords, lawyers, capitalists etc etc Why should one make sacrifices for the sake of these rich classes ? They plunder the people I am a socialist, and I have written several letters to the "Labour Leader" of London from the standpoint of an Indian socialist and Home-Ruler

(3) I devoted myself to Indian movements fifteen years ago, and sacrificed every thing for them But what has been the result ? Only sickness and waste of time and energy Is it not so ? Well, why do you advise me to begin again The students and the common people of India can show much zeal and courage, but your rich men will never give money for any movement. They love money more than anything else in the world. And what can your educated men do without money, especially when they wish to

organize political movements Thus all your sacrifice will be useless and fruitless, as you will never get money from the rich people. This has been my experience. No one helped me with money, when I was ill in foreign countries, and nothing could be done for the movement.

(4) I have not married in Sweden. I am already married in India, and my wife and daughter are in Delhi I hear from them regularly, and they may come to Sweden, if circumstances permit.

(5) I have no passport of any kind, not even a British passport How can I travel ? Further no amnesty has been declared in India, and I have already been condemned by the law-courts there for many political offences So I must live here as a refugee

(6) I am willing to write good books in Hindi and Urdu for the people of India. You have so much noise and agitation in India, but you have very few good books on history, politics, modern civilization, etc. Such books are necessary for the general enlightenment of the public, and many useful movements will arise on the

soil thus prepared I give much time to study, and shall be glad to initiate a series of good books of this kind. Here in Europe, the public mind is first trained and elevated by many such books, which are sold at a cheap price. If you can help me in this plan

I shall be thankfull It is an important plan.

If you pass Gothenburg at any time, I shall be happy to see you Please inform me if you happen to travel by this route

I must give a course of lessons at a school next week I earn my living in this country by giving lessons and lectures in Swedish so it is impossible for me to come to Stockholm

Please write to me if you can arrange for the publication of books in Hindi and Urdu. The real Renaissance in India requires a large number of good books translated or compiled from different European languages Dont you think so ?

With best wishes,

Yours sincerely

Har Dayal

Molnlycke (Sweden)
15th. Dec. 23.

My Dear Swami Satya Deva ji,

I have written to you about a practical plan. I wish to write several books in Hindi and Urdu during the next few years, dealing with democratic movements in Europe and America, the lives of great leaders, etc. I also wish to translate some great European books on politics and sociology into Hindi and Urdu In this way, I can give India all that I have learnt and acquired through my studies. The foundations of future democratic movement in India will thus be laid firm and deep Such books are absolutely necessary

If you know some nationalists, who can spend money on this plan, you can write to me. The Indian "Patriots" have plenty of money, but I have lived on the charity of foreign friends and acquaintances This is not very encouraging. Many people talked of my "sacrifice" and "personality", but no one helped me with money for my work or even for my personal need in foreign countries ! Such are your rich "nationalists" in India Nothing can be done under such

circumstances. Why do you blame me? I wished to write these books in 1909, but there was no money for the work

You can arrange for the publication of the books in India I leave it entirely to you and your friends There is no danger in co-operating with me now, as I am not a "revolutionary" politician now, and this is only literary work of an educational tendency I correspond with my friends in England and India, and I am a member of scientific societies in England. You can safely carry out this plan, if you like

Well, you should reply to this letter, and not blame me for inactivity I can do this important work here during the next few years, if your rationalist friends can help me with money If they cannot do so, let the matter drop But don't blame me in future. I cannot do impossible thing Let the Indian "Patriots" perish with their money

Through these books, entire history and spirit of European Democracy and Freedom can be transferred to Hindi and Urdu, and this is the real fundamental work It will bear fruit during the whole of the twentieth century

Now it is for you to think over the matter.

Some time in the future, I may come to India and take part in the practical work of political organization But at present, I must write these books, if the nationalists can help with money.

I shall call the whole series राजनीति ग्रन्थ or राजनीति दर्शन such a political 'shastra' will produce many patriots, democrats and social reformers and idealists during the next fifty years

With best wishes,
Har Dayal

Molnlycke (Sweden)
25-1-24

My Dear Swami Satya Deva ji,

I am very happy to learn that you are willing to help me to publish these books I wished to stay in London and write this series in 1909 and the following years, and appealed to our nationalist friends and "Leaders" to try and arrange for my residence in London I was only a young man then. But it was not found possible to get together the small amount of money needed for the whole plan. So I had to travel about aimlessly in America and Europe That was when

you met me in Boston I was practically doing nothing for India then It was sheer waste of life after so much aspiration and sacrifice I did not complain in my letter about recent events that have happened since 1918. I reffered to the failure of these plans in 1909 on account of want of money I regard these books as my best gift to our people. I believe in the great influence and power of such books among young men next to the inspiring effect of personal sacrifice. When I finish this series, I shall feel as if I had repaid a ऋण to India. The next fifty years will show the awakening power of this series. We want a general all round "Renaissance" in India (especially in the Indian states) and not merely this or that particular social or political movement with its limited programme, of course our activity must run in these different channels, and new parties, organisations, Samajes and movements with special aims must arise But we want first to transplant all the ideas and ideals of Europe and America to the Indian languages. I do not much believe in the popular influence of books and news papers written in English Even B A's and M A.'s enjoy and understand new

ideas better in their मातृभाषा. When we have put everything that is lofty and inspiring in European culture before our countrymen in history and a systematic and thorough manner, we have discharged a great duty as "educated" Indians. This is the seed that must be sown.

I shall begin today to prepare the first vol. of the series I travel about in villages and towns during the winter. So I can send you only one book very soon, as I shall have to write and translate at hotels, while I am travelling and lecturing. But I shall be free from this work in April, and then I shal be able to write more quickly in summer. Some books will consist only of translations of standard historical books which have been translated into all modern languages, and which every civilized nation should possess in its own tongue Other books will be written by me on different subjects. You can find a name for the whole series, such as यूरोपीय ग्रंथमाला, or नवीन सभ्यता प्रकाशणी, etc. etc. "Western civilization series" The volumes on "राजनीति विज्ञान" will be a part of it, dealing with politics and freedom But many other subjects will come in, and many great well known books will be

translated from Greek, Latin, French, German, Italian and English

I hope that other active Educated men will join in the work later on

To begin with, I send you a Hindi translation of an old Greek book, Diogenes Laertuiss "Lives of Greek Philosophers" It is also desirable that I should not begin at once with a very *"political"* book, as I wish to create a general "Renaissance" spirit, and not to do any political agitation directly or indirectly The entire national life must be raised to a higher plane.

I shall first write about ancient Greece and its history, etc That is the first important thing for all Asiatic nations You know that modern European civilization is based on Greek ideals In fact, the study of Greek books started the modern movement in Italy in the 15th century and freed Europe from the mystics, priests, monks and ascetics of the middle ages That is what has made Europe great and democratic. So I regard it as my first task to transfer to Hindi as much as possible about Greece. These will be the first volumes As they all deal with ancient civilization, they will only help general culture and can

not be regarded as "political" books". You see many Indians are so timid that I have to reassure them now I know their psychology—.

I wish that you would kindly consider the following points—

(1) The books should also be translated there into simple Urdu and Punjabi

(2) Please make special arrangments for the sale of the books, in the Indian States Kindly send some agents to arrange for the sale through bookseellers or newspaper offices in Patiala, Indore, Srinagar, and other towns in the States Better movements will arise in the half-free States than in enslaved British India. You will see.

(3) If binding does not raise the prices too much, please sell them bound in cloth, or both in paper and cloth

(4) The price should be low, so that shop-keepers, farmers and students can buy them I myse f do not wish to receive any money for them So you can publish them for the common people, and not only for the "educated" lawyers. I wish to reach the students and the farmers, and these classes cannot by books worth more

than As 12 or 1 Rupee If necessary, a big book may be published in two parts but each separate vol must be small and cheap It is necessary to think of our public. In no case must the price exceed Rs 1 The average price should be As. 8 The size of the vol can be reduced, if necessary.

More again

Please buy for me and send me the best and biggest English-Hindi Dictionary, that you can get there I shall need such a Dictionary to find new Hindi terms for various English words I have not read any Hindi book or paper for 6 years, as I thought that I had cut-off all connection with India and Indian movements Please also send me some books of new Hindi poetry I want an English-Hindi Dictionary, not a Hindi-English Dictionary

With much love,
Your sincerely
Har Dayal

लाला हरदयाल जी के पत्र

भोलनस्नि्के
(स्वीडन)
१२ दिसम्बर १६२३ ई०

प्रिय स्वामी सत्यदेव जी !

आपके कृपा पत्र के लिए धन्यवाद !

मैं आपके प्रश्नों का उत्तर नम्बरवार दूंगा—

(१) मैं बर्लिन और कैलीफोर्निया के क्रान्तिकारी भारतीय राष्ट्र व दीय के साथ काम नहीं करना चाहता। मैं यह नहीं समझता कि वे कुछ कर सकेंगे। मैं होमरूल पार्टी को, जो भारत के लिए आयर्लेण्ड की तरह ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर स्वराज्य चाहती है, पसन्द करता हूं। सन १९१९ में मैंने जो लेख लिखे थे, उनमें मैंने अपनी स्थिति पूरी तरह प्रकट कर दी थी।

(२) होमरूल पार्टी के अन्दर मैं केवल गरीब लोगों, किसानों और मजदूरों के लिए काम करता हूं। मैं जमींदार, वकील आदि पूंजिपतियों के लिए या उनके साथ काम नहीं करना चाहता। इन अमीर लोगों के लिए कोई क्यों त्याग करे ? ये लोगों को लूटते हैं। मैं साम्यवादी हूं। और मैंने एक भारतीय साम्यवादी और होमरूलर के दृष्टि विन्दु से लण्डन के "लेबर लीडर" में कई पत्र लिखे हैं।

(३) पन्द्रह वर्ष हुए मैंने अपनी शक्तियां भारतीय आन्दोलनों में लगा दीं और उनके लिए अपना सर्वस्व होम कर दिया। परन्तु नतीजा क्या हुआ ? केवल स्वास्थ्य का, समय रुपये और शक्ति का विनाश। क्या यह बात नहीं है ? फिर आप मुझ से उसी काम में फिर से जुटने के लिए क्यों कहते हैं ? हिंदुस्तान के विद्यार्थी और जन-साधारण बहुत उत्साह और साहस दिखा सकते हैं, परन्तु आपके अमीर लोग किसी आन्दोलन को फूटी कौड़ी भी न देंगे। वे रुपये को जितना चाहते हैं, दुनिया में

और किसी चीज को उतना नहीं चाहते, और बिना रुपये के आप के पढ़े लिखे लोग कर ही क्या सकते हैं ? खास कर उस समय जब कि वे राजनीतिक आन्दोलना का सङ्गठन करना चाहते हैं। इस प्रकार आपका सब त्याग निरर्थक और निष्फल होगा। क्योंकि आप को अमीरों से रुपया कभी न मिलगा। मेरा तजरुबा तो यही है। जब मैं परदेशों में बीमार था तब किसी ने भी मेरी रुपये पैसे स मदद नहीं की और आन्दोलन के लिए भी कुछ नहीं किया जा सका।

(४) मैंने स्वीडन में शादी नहीं की है। मेरा विवाह तो हिन्दुस्तान में पहले ही हो चुका है और मेरी धर्मपत्नी तथा कन्या दिल्ली में है। मुझे उनके समाचार नियमित रूप से मिलते रहते हैं, और यदि पूरी स्थिति अनुकूल हो तो वे स्वीडन आ सकते हैं।

(५) मेरे पास किसी प्रकार का कोई पासपोर्ट नहीं, ब्रिटिश प स पोर्ट भी नहीं, फिर मैं सफर कैसे कर सकता हूं। इस के अतिरिक्त हिन्दुस्तान में मुझे कोई रिहाई नहीं दी गई। अदालतें मुझे पहले ही अनेक राजनीतिक अपराधों का अपराधी ठहरा चुकी हैं। इसलिए मुझे शरणागत की तरह यहां रहना पड़ेगा।

(६) मैं हिन्दुस्तान के रहने वालों के लिए हिन्दी, उर्दू, में अच्छी पुस्तकें लिखने के लिए तैयार हूं। हिन्दुस्तान में शोर गुल और हलचल तो बहुत है परन्तु इतिहास, राजनीति, आधुनिक

सभ्यता, इत्यादि पर अच्छी पुस्तकें बहुत ही कम हैं। हमारी जनता की ज्ञान-वृद्धि के लिए ऐसी पुस्तकों की आवश्यकता है। इस प्रकार तैयार की हुई भूमि में अनेक उपयोगी आन्दोलन उठ खड़े होंगे। मैं अध्ययन में बहुत समय लगाता हूं। अतः मैं अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक इस प्रकार की अच्छी पुस्तक-माला प्रारम्भ कर दूंगा। यहां योरुप में पहले इस प्रकार की अनेक पुस्तकों से, जो सस्ती बेची जाती हैं, जनता के मस्तिष्क को शिक्षित और उच्च बनाया जाता है। यदि आप इस योजना में मेरी सहायता कर सकें तो मैं आपका कृतज्ञ हूंगा। यह बड़ी महत्वपूर्ण योजना है।

यदि आप कभी गोटहैनबर्ग के रास्ते से गुजरें तो मुझे आप से मिल कर बड़ी प्रसन्नता होगी। यदि आपको इस रास्ते से निकलने का मौक़ा मिले तो कृपया मुझे सूचित कीजिएगा।

इस देश में मैं स्वीडिश भाषा में व्याख्यान देकर या पाठ पढ़ा कर अपना निर्वाह करता हूं। अगले सप्ताह मुझे एक स्कूल में कुछ पाठ पढ़ाने होंगे। इसलिए मेरे लिए स्टौकहोल्म आना असम्भव है।

यदि आप हिन्दी, उर्दू में मेरी पुस्तकों के प्रकाशन होने का प्रबन्ध कर सकते हैं तो कृपया मुझे लिखिए। भारत के वास्तविक अभ्युत्थान के लिए भिन्न भिन्न यूरोपियन भाषाओं से अनुवादित या सङ्कलित अनेक अच्छी पुस्तकों की आवश्यकता है। आपकी क्या राय है?

आपका —हरदयाल।

मोलनलिके, स्वीडन

१२ दिसम्बर, २३

प्रिय स्वामी सत्यदेव जी,

मैं आपको एक व्यावहारिक योजना के सम्बन्ध में लिख चुका हूं। आगामी कुछ सालों में, मैं हिन्दी-उर्दू में यूरुप और अमेरिका के प्रजातन्त्रीय आन्दोलनों, वहाँ के बड़े बड़े नेताओं की जीवनियों इत्यादि पर, कई किताबें लिखना चाहता हूँ। राजनीति और समाज-शास्त्र पर कुछ बड़े बड़े यूरोपियन ग्रन्थों का हिन्दी-उर्दू अनुवाद भी करना चाहता हूँ। इस प्रकार अपने अध्ययन द्वारा जो कुछ मैंने सीखा और पाया है, वह सब मैं अपने देशको दे सकता हूँ। इस प्रकार भारत में भावी प्रजावादी आन्दोलनों की गहरी और मजबूत नींव पड़ जायगी। इस प्रकार की पुस्तकें बहुत ही आवश्यक हैं।

यदि आप कुछ ऐसे राष्ट्रवादियों को जानते हैं जो इस काम के लिये कुछ रुपया खर्च कर सकते हैं तो मुझे लिखिये। भारतीय "देशभक्तों" के पास रुपये की कमी नहीं परन्तु मैंने विदेशी मित्रों और परिचितों की दानशीलता पर अपना निर्वाह किया है। यह स्थिति उत्साहवर्द्धक नहीं। मेरे "त्याग" और मेरे "व्यक्तित्व" की तारीफ तो बहुत से लोग करते थे परन्तु रुपये पैसे से परदेशों में मेरे काम की या मेरी निजी सहायता किसी ने नहीं की। ये हैं आप के हिन्दुस्तान के अमीर "नेशनैलिस्ट"। ऐसी परिस्थिति में तो कुछ किया ही नहीं जा सकता।

आप मुझे दोष क्यों देते हैं ? मैं तो १९०९ में ही ये पुस्तकें लिखना चाहता था पर मुझे इस काम के लिये रुपया ही न मिला ।

आप पुस्तकों के भारत में छपने का प्रबन्ध कर सकते हैं। मैं यह सब आप और आप के मित्रों पर ही छोड़ता हूं । अब मेरे साथ काम करने में कोई खतरा भी नहीं रहा, क्योंकि अब मैं "क्रांतिकारी" नहीं, और यह तो एक शिक्षात्मक साहित्यिक काम है । मैं इगलैंड तथा हिन्दुस्तान मे अपने मित्रोंके साथ पत्र-व्यवहार करता हूँ और इङ्गलैण्ड की वैज्ञानिक सभाओं का सभासद् हूँ। यदि आप चाहें तो बिना किसी खतरे के यह काम कर सकते हैं।

आप इस पत्र का उत्तर दीजिये । मुझे निष्क्रियता के लिए दोष न दीजिये । यदि आपके राष्ट्रवादी मित्र रुपये से मेरी सहायता कर सकते हों तो मैं अगले कुछ सालों में यह महत्वपूर्ण कार्य कर सकता हूँ। अगर वे ऐसा नहीं कर सकते, तो रहने दीजिये । परन्तु, फिर भविष्य मे मुझे दोष न दीजिये। मैं असम्भव बातें नहीं कर सकता। भारतीय "देशभक्त" अपने रुपये के साथ भाड़ मे जायँ।

इन पुस्तकों द्वारा, यूरोपियन प्रजातन्त्र और स्वतन्त्रता का पूरा इतिहास और सारा भाव हिन्दी उर्दू मे भरा जा सकता है, और यही वास्तविक स्थायी काम है । यह बीसवीं शताब्दी

भर फलप्रद रहेगा। अब इस मामले पर विचार करना आप का काम है।

भविष्य मे कभी मैं भारत लौटकर राजनैतिक सङ्गठन के व्यावहारिक काम मे भाग ले सकता हूँ। परन्तु इस समय तो, यदि नेशनैलिस्ट रुपये से मदद कर सकें, मैं ये पुस्तकें लिख सकता हूँ।

मैं इस पुस्तक माला को राजनीति-शास्त्र या राजनीति-दर्शन कहूँगा। ऐसे राजनैतिक शास्त्र से आने वाले पचास सालों म अनेक देशभक्त 'प्रजातन्त्रवादी' समाजसुधारक और आदर्शवादी उत्पन्न होंगे।

आपका—

हरदयाल

मोलनलिके, स्वीडन

२५।१।२४

प्रिय स्वामी सत्यदेवजी,

मुझे यह जान कर बड़ी भारी खुशी हुई कि आप इन पुस्तकों के प्रकाशन में मेरी सहायता करने को तैयार हैं। सन् १९०९ में मैं लण्डन में कुछ साल तक ठहर कर इस पुस्तक मालाके लिखने का कार्य करना चाहता था। मैंने नेशनैलिस्ट मित्रों और "लीडरों" से अपील की कि वे मेरे लिए लण्डन में रहने का

प्रबन्ध करने की कोशिश करें। उस समय मैं एक नवयुवक था। परन्तु इस सारी योजना के लिए जितने थोड़े से रुपये की ज़रूरत थी उतने रुपये इकट्ठा करना भी शक्य नहीं हुआ। इस लिए मुझे अमेरिका और यूरुप में निरुद्देश घूमना पड़ा। यह उस समय की बात है जब आप बोस्टन में मुझसे मिले थे। उस समय मैं वस्तुत भारत के लिए कुछ भी नहीं कर रहा था। इतनी आकांक्षाओं और इतने त्याग के बाद जीवन को व्यर्थ ही बरबाद किया। मैंने अपने पहले पत्र में हाल की उन घटनाओं का उल्लेख नहीं किया जो १९१८ के बाद हुईं। मैंने रुपये न मिलने के कारण १९०९ में इस योजना की असफलता का ही उल्लेख किया था।

इन पुस्तकों को मैं जनता के लिये अपना सर्वोत्तम उपहार समझता हूँ। मेरा विश्वास है कि वैयक्तिक त्याग के स्फूर्ति प्रदायक प्रभाव के बाद ऐसी पुस्तकों का ही बहुत असर पड़ता है। जब मैं इस पुस्तक माला को समाप्त कर लूगा तब मैं यह अनुभव करने लगूगा कि मैंने भारत का एक ऋण चुका दिया। आगे के पचास साल इस पुस्तक माला की जगाने वाली शक्ति का परिचय देंगे। हम भारत में (विशेष कर देशी राज्यों में) सर्वव्यापी, अभ्युत्थान चाहते हैं। केवल परिमित कार्य क्षेत्र वाले सामाजिक या राजनैतिक आन्दोलन ऐसा फल पैदा नहीं कर सकते। यह ठीक है कि हमारी क्रियाशीलता इन भिन्न भिन्न धाराओं में बहेगी और

नित नवीन उद्देशोंसे प्रेरित नित्य नवीन दृश्य, संगठन, समाज, और आंदोलन खड़े होंगे। परन्तु हम पहले यूरुप और अमेरिकाके सामाजिक भावों और आदर्शों को भारतीय भाषाओं में भर देना चाहते हैं। मुझे इस बात में अधिक विश्वास नहीं है कि अंग्रेजी की पुस्तकों और समाचार पत्रों का प्रभाव जनता पर पड़ सकता है। बी० ए० और एम० ए० भी नवीनभावोंको अपनी मातृभाषा मेंही अधिक अच्छी तरह समझते और उनसे आनन्द उठाते हैं। यदि हम यूरोपियन इतिहास और संस्कृति के समस्त उच्च और स्फूर्ति प्रदायक भाव सुव्यवस्थित तथा सुचारू ढंग से अपने देशवासियोंके सामने रख देंगे तो हम "शिक्षित" भारतीयों की हैसियत से एक महान कर्त्तव्य का पालन करने लगेंगे। यह ऐसा बीज है जो अवश्य बोया जाना चाहिये।

आज मैं इस माला की पहली पुस्तक लिखना आरम्भ कर दूंगा। शीत–काल में मैं गावों और नगरों में घूमता फिरता हूँ इसलिए मैं शीघ्र तो आपके पास एक ही किताब भेज सकूंगा क्योंकि मुझे सफर करते हुए और व्याख्यान देते हुए होटलों में लिखना पड़ेगा। परन्तु अप्रैल में मैं इस काम से छुट्टी पा जाऊँगा उस समय गर्मियों में मैं अधिक शीघ्रता से लिख सकूंगा। कुछ पुस्तकें तो उन प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रन्थों का अनुवाद मात्र होंगी, जिनका अनुवाद समस्त अर्वाचीन भाषाओं में हो चुका है और जिन्हें प्रत्येक सभ्य राष्ट्र को अपनी भाषा में रखना चाहिये। दूसरी पुस्तकों को मैं स्वयं भिन्न भिन्न विषयों पर

लिखूंगा। आप समस्त पुस्तक-माला के लिए कोई नाम रख सकते हैं—जैसे योरोपीय ग्रन्थमाला या नवीन सभ्यता प्रकाशिणी। राजनीति और सभ्यता से सम्बन्ध रखने वाली—विज्ञानमाला इस माला का एक भाग होगी। परन्तु इसमें और भी विषय आ जायगे और अनेक सुविख्यात पुस्तकों का ग्रीक, लैटिन, फ्रैंच, जर्मन, इटैलियन और अंग्रेजी से अनुवाद करना होगा।

मुझे आशा है कि अन्य क्रियाशील शिक्षित मनुष्य इस काम में पीछे से शामिल हो जायगे।

शुरूमें, मैं आपके पास एक प्राचीन ग्रीक ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद भेजता हूं। मैं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कोई राजनैतिक आन्दोलन नहीं करना चाहता। परन्तु एक व्यापक अभ्युत्थान का भाव उत्पन्न करना चाहता हूं। इसलिए यह भी वाञ्छनीय है कि मैं शुरू में कोई राजनैतिक पुस्तक न लिखूं। हमें सम्पूर्ण राष्ट्रीयजीवन को ऊंचा उठाना होगा।

पहले मैं प्राचीन ग्रीस और उसके इतिहास के सम्बन्ध में लिखूंगा। समस्त एशियाई राष्ट्रों के लिये यह सबसे पहली महत्वपूर्ण बात है।

आप जानतेहैं कि अर्वाचीन योरोपियन सभ्यता ग्रीसके आदर्शों पर निर्धारित है। वास्तवमें यूनानी पुस्तकोंके अध्ययन से ही पन्द्रहवीं शताब्दी में इटली में अर्वाचीन आन्दोलन शुरू हुआ और इन्हीं पुस्तकों के प्रचार से यूरपको मध्यकालीन अज्ञेयवादियों, पुजारियों,

महन्तों और साधुओं के चङ्गुल से मुक्त किया। इसी से यूरुप महान और प्रजातन्त्रवादी बना। इसलिए मैं इसे अपना सबसे पहला काम समझता हूँ कि मैं ग्रीस के सम्बन्ध में हिन्दी में यथासम्भव जितना ज्ञान भर सकूँ भरूँ। ये ही पहली पुस्तकें होंगी, क्योंकि ये सब प्राचीन सभ्यता से सम्बन्ध रखती हैं इसलिए वे साधारण संस्कृति की वृद्धि करेंगी। ये पुस्तकें "राजनैतिक" नहीं मानी जा सकतीं। आप जानते हैं कि बहुत से हिन्दुस्तानी कितने डरपोक होते हैं कि अब मुझे उनका भय दूर करना पड़ता है। मैं उनकी चित्तवृत्ति जानता हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप कृपा कर नीचे लिखी बातों पर विचार करेंगे—

(१) पुस्तकों का अनुवाद सरल उर्दू और पंजाबी में भी किया जाय।

(२) कृपया देशी राज्यों में पुस्तकों की बिक्री का विशेष प्रबन्ध कीजियेगा। कृपा कर देशी राज्यों के, (पटियाला, इन्दौर, श्रीनगर इत्यादि) शहरों में, बुकसेलरों या समाचारपत्रों के कार्यालयों द्वारा इन पुस्तकों को बिकवाने के लिए एजेण्ट भेजें। गुलाम ब्रिटिश भारत से अर्द्ध-स्वतन्त्र देशी राज्यों में बहुतर आन्दोलन खड़े होंगे।

(३) यदि जिल्दसे क़ीमत बहुत ज्यादा न पड़ जाय तो कृपया पुस्तकों की जिल्द कपड़े की, पाकपक्के और कागज़ दोनों की मँगवाइये।

(४) क़ीमत कम होनी चाहिये जिससे दूकानदार, किसान और विद्यार्थी उन्हें खरीद सकें। मैं स्वयं पुस्तक लिखने के लिए

कुछ पुरस्कार नहीं चाहता इसलिए आप उन्हें जन साधारण के लिए प्रकाशित कर सकते हैं। केवल पढ़े लिखे वकीलों के लिए ही नहीं, मैं विद्यार्थियों और किसानों के पास पहुंचना चाहता हूँ और ये लोग एक रुपया या बारह आने से अधिक मूल्य की पुस्तकें नहीं खरीद सकते। जरूरी हो तो बड़ी किताबें दो भागों में प्रकाशित की जासकती हैं, परन्तु हर एक पुस्तक छोटी और सस्ती होनी चाहिये। हमें अपने पाठकों की स्थिति का ध्यान रखना चाहिए। किसी भी हालत में क़ीमत एक रुपये से ज्यादा न हो। औसत का मूल्य ॥) रहे। ज़रूरत हो तो किताब छोटी की जा सकती है। अधिक फिर।

कृपया मेरे लिये एक सबसे अच्छी और सबसे बड़ी इंगलिश-हिन्दी डिक्शनरी, जो वहाँ मिल सके, खरीद कर भेज दीजिये। विभिन्न अङ्गरेजी शब्दों के लिए नवीन हिन्दी शब्द ढूंढ़ने के लिए मुझे एक ऐसे कोष की आवश्यकता होगी। छ साल से मैंने कोई हिन्दी पत्र पत्रिका या पुस्तकें नहीं पढ़ीं, क्योंकि मैं समझता था कि हिन्दुस्तान या हिन्दुस्तान के आन्दोलनों से मेरा सारा सम्बन्ध छूट गया। कृपया नवीन हिन्दी-कविता की कुछ पुस्तकें भी मेरे पास भेज दीजिये।

मुझे अङ्गरेजी हिन्दी कोष की आवश्यकता है, हिन्दी-अङ्गरेजी कोष की नहीं।

आपका प्रेमी—हरदयाल

प्यारे पाठक, लाला हरदयालजी के हृदय के उद्‌गारों को मैंने आपके सामने रख दिया है। लालाजीने जो स्वार्थ त्याग अपने प्यारे देश के लिए किया है उसे आप भली प्रकार जानते हैं। ऐसे सच्चे देशभक्त की उसके देशवासियों ने क्या क़दर की? विदेश में वे बीमार रहे। उन्होंने भूखों दिन काटे, उनके अपने देशवासियों ने उनकी कुछ भी सहायता नहीं की। जिन विदेशियों को हम प्रकृतिवादी बतलाते हैं उन्होंने लालाजी की मदद की और उनके प्राण बचाए।

मुझे पिछले चौदह वर्षों का अपना इस विषय में बड़ा कडुआ अनुभव है। मैंने संयुक्त प्रांतमें अधिक समय तक काम किया है, अपनी शक्ति भर इस प्रान्त में राष्ट्रीय भावों का प्रचार किया है, पर इस बार अपनी आखों का इलाज कराने के लिए योरुप जाते समय यहा के किसी व्यक्ति ने एक पैसे से भी मेरी सहायता नहीं की, यदि मेरे सिन्धी, गुजराती, पारसी और पंजाबी देशबन्धु मेरी धन से मदद न करते तो मेरा योरुप जाकर आखों का इलाज कराना कठिन हो जाता। संयुक्तप्रांत वाले निंदा करेंगे, दोष देखेंगे, बुरा अभिप्राय लगावेंगे और काम करने वाले को नीचे गढ़े में ढकेलने की चेष्टा करेंगे। मैंने नीरोग साहित्य की रचना कर नवयुवकों की सेवा की है तो लोग मुझे व्यवसायी बतलाते हैं, हालाँ कि इस व्यवसाय से मैंने कोई भवन खड़ा नहीं कर लिया। पोलिटिकल काम करने वाले को आर्थिक स्वतन्त्रता की कितनी भारी ज़रूरत है, और रुपये के बिना वह कभी साधन

सम्पन्न होकर शत्रु से नहीं भिड़ सकता, इस बात को हमारे देश-वासी नहीं समझते।

× × × × ×

इस आर्थिक स्वतन्त्रता के होने से ही मैं अपने स्वतंत्र विचारों की रक्षा कर रहा हूं। यदि मैं रुपये के लिए देश के लीडरों, पूंजी पतियों और सेठों पर निर्भर रहता तो मेरा व्यक्तित्व कभी का नष्ट हो गया होता। लाला हरदयालजी के पत्र बतलाते हैं कि बड़े से बड़े स्वार्थ त्यागी पुरुष भी अर्थ यन्त्रणा में आकर किस प्रकार व्यथित हो जाते हैं। इस व्यथा को नीचाशय पुरुष क्या जानें। मेरा तो यह पथ है—

Some will hate thee, Some will love thee,
Some will flatter, Some will slight
Cease from man, and look above thee;
Trust in God, and do the right

अर्थात्—कुछ लोग तुम्हारे साथ घृणा करेंगे, कुछ तुमसे प्रेम करेंगे, कुछ तुम्हारी झूठी तारीफ़ करेंगे, कुछ तुम्हारी निंदा करेंगे, इसलिए मनुष्य की तनिक परवाह न कर, ईश्वर पर भरोसा रख, अपने आत्मा के आदेशानुसार, सचाई के साथ कार्य करते जाना चाहिए।

—— ❀ ——

तेईसवाँ अध्याय

डाक्टर फुक्स से भेंट

योरप में सफ़र करने वाले भारतियों को पासपोर्ट-परीक्षा की बात बहुत अखरती है। उनके अपने देश में वे कलकत्ते से पेशावर तक रेल में बैठे हुए चले जाते हैं और किसी भी जगह उनके माल असबाब की परीक्षा नहीं होती, इसके विपरीत योरप में दिन रात के सफ़र में कई बार पासपोर्टपरीक्षा और माल असबाब की जांच करानी पड़ती है। स्वीडन की हद छोड़ते समय, जर्मनी की हद में प्रवेश करने पर, जर्मनी का देश खतम होने पर, और आस्ट्रिया में प्रवेश करते समय, इस प्रकार बार बार स्टाकहोलम से वियाना जाने वाले मुसाफ़िरों की तलाशी ली जाती है। यह ऐसी अड़चन है जिसके कारण मुसाफिरों को रेल में सफ़र करते समय अत्यन्त बुरा मालूम होता है पर क्या किया जाए। योरप के पिछले महाभारत युद्ध ने जातियों को एक दूसरे का दुश्मन बना दिया है। भविष्य में आपस के ऐसे अविश्वास का क्या परिणाम होगा, यह ईश्वर जाने।

रात के आठ बजे गाड़ी बर्लिन पहुंच गई। मैंने अपने प्रेमी मित्रों को अपने आगमन की सूचना दे दी थी, पर न जाने कैसे वे मुझे न मिले, इसलिये मैं अपना सामान कुली के कंधे पर रखवा कर निकट के होटल में चला गया और वहीं रात बिताई।

सबेरे इंडियन इनफोरमेशन ब्यूरो में आकर मालूम हुआ कि कई भारतीय सज्जन स्टेशन पर मुझे लेने गये थे, पर चूंकि मैं एक दूसरे रास्ते से निकल गया, इस लिये वे मुझे नहीं मिले। खैर अपनी सब डाक लेकर, सब मित्र प्रेमियों से विदा होकर मैं रात की गाड़ी से वियाना की तरफ रवाना हुआ। इस बार भी रेल में एक अंग्रेज से भेंट हुई। जिसने मुझे वियाना के होटलों का पता लिख दिया। दूसरे दिन शाम को मैं वियाना पहुँचा। यह अंग्रेज महाशय अपने आपको संसार के विद्यार्थी-संघ का मंत्री बतलाते थे और कहते थे कि उनकी ड्यूटी वियाना में लगी हुई है और उनका दफ्तर वियाना विश्वविद्यालय की एक इमारत में है। भारत में निरंतर राजनीतिक क्षेत्र में काम करने के कारण मुझे इस प्रकार के गंगाजमुनी आदमियों से मिलने का बहुधा काम पड़ता रहता है और ऐसे आदमियों से मुझे कुछ स्वाभाविक घृणा भी है, इसलिए मैंने उससे कुछ बातें नहीं कीं। एक लेडी मुझे वियाना स्टेशन पर लेने के लिये आई हुई थी। उसी की मदद से मुझे होटल में एक कमरा मिल गया। शहर में आज कल बड़े दिनों के कारण बहुत मुसाफिर आये हुये थे। ईसाईयों का सब से बड़ा त्यौहार क्रिसमस है। हमारे लोग इसे बड़ा दिन कहते है। वियाना में इन दिनों बड़ी भीड़ थी, होटल सब भरे हुए थे, विदेशियों की बड़ी संख्या शहर में थी और वियाना के इर्द गिर्द के कस्बों के धनिक लोग भी अपनी राजधानी में बड़े दिन का आनन्द देखने के लिये आ रहे थे।

यह शहर योरुप के अत्यन्त खूबसूरत शहरों में से एक है और किसी कालमें वियाना योरुपकी नाक समझी जाती थी। बड़ी बड़ी सलतनतें यहां पर स्थापित हुईं और मिट गईं। किसी काल में मुसलमान लोग तलवार मारते मारते यहां तक पहुंचे थे। उनके क्रूर स्वभाव, असभ्य चाल ढाल और पशुपन की बातों ने उनको सब का घृणास्पद बना दिया और योरुप की जातियों ने उन्हें मार मार कर पीछे धकेला, उनकी बड़ी दुर्दशा की और अन्त का मुसलमानों का सुलतान योरुप का बीमार आदमी बन कर कुस्तुनतुनियां में लेट गया और अपने साम्राज्य के सूबे बेच बेचकर दुराचार में जीवन व्यतीत करने लगा। यदि योरुप की जातियाँ आपस की राजनीतिक ईर्षा में न फंसी होतीं तो मुसल-मानों की खिलाफत और तुर्की के साम्राज्य का नामोनिशान दुनियां से मिट जाता, पर देव को यह मंजूर न था।

वियाना हैप्सबर्ग खानदानके बादशाहों की राजधानी रहा है। उन्होंने इस नगर की शोभा बढ़ाने में कोई कसर बाकी नहीं रक्खी। डेन्यूब नदी के किनारे यह शहर बसा होने के कारण इसकी सुन्दरता और भी बढ़ गई है और इसका सम्बन्ध समुद्र के साथ होगया है। डेन्यूब बड़ी भारी नदी है, इसकी लम्बाई अट्ठारह सौ मील है। हमारी गंगाजी की लम्बाई डेन्यूब से तीन सौ चालीस मील कम है। प्राकृतिक शोभा के लिहाज से यह शहर बड़ी अच्छी जगह पर बसा हुआ है। इसके एक तरफ पूर्वी एल्पस् पर्वत में नमक, लकड़ी और लोहे की बड़ी अधिकता

है। इसके निकटवर्ती बोहेमिया में कोयले और चांदी की बहुत सी खानें हैं, मोरेविया की बड़ी उपजाऊ भूमि भी इसके निकट ही है और हंगरी में तांबे की खानें तथा दूसरी धातु भी पाई जाती हैं। इन उपयोगी धातुओं की बहुतायत होने के कारण वियाना में बहुत से कल कारखाने हैं, जहां लोहे की चीजें रेशमी वस्त्र, लकड़ी का सामान तथा जड़ाऊ काम तय्यार होता है। यहां की आब हवा नीरोग है, पर गर्मियों में अधिक गर्मी और सर्दियों में अधिक सर्दी पड़ती है। जब मैं वियाना जाकर पहुंचा तो सर्दी का आरम्भ हो गया था। दो चार दिन के बाद खूब हिम पड़ने लगा। वियाना आने का मेरा केवल मतलब डाक्टर फुक्स से मिलना था। इस डाक्टर ने आंखों के इलाज में बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की है। वृद्धावस्था होने के कारण अब वे वियाना विश्व विद्यालय में काम नहीं करते, लेकिन प्राइवेट तौर पर आंखों का इलाज करते हैं।

आज बर्फ नहीं थी। होटल से निकल कर मैं डाक्टर फुक्स की तलाश में निकला। मेरे होटल के पास ही विश्वविद्यालय की इमारतें होने के कारण मुझे कुछ अधिक दिक्कत उनके तलाश करने में नहीं पड़ी। ढूंढता ढूंढता मैं पहले विश्वविद्यालय में पहुंचा। शरीर के प्रत्येक अंग का इलाज करने के लिये अलग अलग अस्पताल, डाक्टर और विशेषज्ञ यहां हैं। यहां भी दूर दूर देशों से विद्यार्थी पढ़ने को आते हैं। विश्वविद्यालय के चपरासी को साथ ले मैं डाक्टर साहब के मकान पर पहुंचा

और डाक्टर साहब से भेंट की। उन्होंने मेरी दोनों आंखों की परीक्षा की। जो बातें मुझे बर्लिन के डाक्टरों ने कहीं थी वही इन्होंने बतलाई। मुझे कुछ विशेष लाभ उनके पास आने से नहीं हुआ, हाँ इतनी तसल्ली अवश्य होगई कि बर्लिन के डाक्टर का किया हुआ आपरेशन इनके भी पसन्द आगया, पर चश्मे के विषय में इनकी राय भिन्न थी। इनसे आंखों के लिए चश्मे का नम्बर लेकर मैं दूसरे डाक्टर के पास गया। जिसने मेरी आंखों की खूब परीक्षा की और अन्त में अपनी राय यह दी कि पढ़ने के चश्मे के सम्बन्ध में वह कुछ नहीं कर सकता, हाँ दूर से देखने का चश्मा बदला जा सकता है। जब कई बार मैंने उससे प्रश्नोत्तर किये तो वह बेचारा झुंझला कर बोला, "आपको ये आंखें निकलवा कर दूसरी आंखें लगानी चाहिये, क्योंकि इनमें काफी क्वर ख्वाब हो चुकी हैं।" मैं हँस कर चुप होरहा। डाक्टर से आंखों के चश्मे का नम्बर लेकर मैं बाहर आया। आज मैंने एक सच्चे आदमी से सच्ची बातें सुनलीं। विधाता ने मुझे उपदेश देने और पुस्तक लिखने के योग्य ही बनाया है। इससे अधिक कोई कठिन काम करने के साधन उसने मुझे नहीं दिये। पढ़ने के लिये भी अक्षरों को बड़ा करने वाले शीशे का उपयोग करना पड़ेगा अर्थात् पढ़ने लिखने के काम में मैं बहुत अधिक अपनी आंखों का उपयोग नहीं कर सकता। जैसी प्रभु की इच्छा, यह विचारता हुआ मैं अपने कमरे में गया। शामको वर्द्धकयन्त्र (Magnifying Glass) खरीद लाया।

क्रिसमस का दिन आगया, दुकानें सजाई जाने लगीं दुकानदार अपनी दुकानों में नया सुन्दर माल दिखाने लगे, फल की दुकानों में तरह तरह के फल बिकने शुरू हुए, आबाल वृ में उत्साह का सचार हुआ, सब कोई नये सूट नये बूट में स कर निकलने लगे। क्रिसमस वृक्ष के लिये वृक्षों की छोटी ब टहनियों के ढेर बाजारों के कोनों पर दिखलाई देते थे। जै भारतवर्ष में दीपमालिका मनाई जाती है वैसे ही ईसाई देशों क्रिसमस का त्यौहार एक सप्ताह तक खूब आनन्द से मना जाता है। मैं रोज क्रिसमस की लहर देखने के लिये बाजार जाया करता था। चारों तरफ सड़कों, बाजारों और मकानों छतों ने सफ़ेद पोशाक पहन ली थी। सैकड़ों मजदूर गलियों बर्फ हटाने के काम में लगे रहते थे। वृक्षों की शाखाओं पर स बर्फ पड़ी हुई बड़ी भली मालूम देती थी। लम्बे ओवरक पहिने हुए नर नारियों के मुन्ड के मुन्ड बाजारों में दुकानदारों माल की शोभा देखने के लिये घूमते थे। रात के समय बिज की शुभ्र रोशनी में गलियों में बिछी हुई बर्फ के गद्दे पर घू बड़ा भला प्रतीत होता था। ऐसे दिन बहुत ठंडे नहीं होते, जिस समय बर्फ़ गिरनी बन्द होजाय, आकाश निर्मल हो, का वेग हो तो फिर क्या कहना ? ऐसा शीत पड़ता है कि र की गति मन्द होने लगती है। बर्फ़ का गिरना ऐसा ही है वर्षा का होना। आकाश बादलों से छपा रहने के कारण पृ की गर्मी शून्य को बहुत अधिक नीचे उतरने नहीं देती, इसी बर्फ गिरने के समय अधिक शीत नहीं होता।

योरुप में काफीहाउसों का बड़ा ज़ोर है। लोग अपनी फ़ुरसत के समय यहीं आकर बैठते हैं। ताश और शतरंज आदि खेल खेलते हैं, दोस्त यारों से मिलते हैं, राजनीतिक विषयों की चर्चा करते हैं, इस प्रकार योरुप के लोगों के सामाजिक जीवन के केन्द्र-स्थल यही काफ़ीहाउस और चायघर हैं। लोग इनमें जाते आते रहते हैं। रात दिन इनमें आने जाने वाले स्त्री पुरुषों का तांता लगा रहता है। इन काफ़ीहाउसों के प्रबन्धकर्त्ता खूब पैसा पैदा करते हैं। शहरों के अन्दर गली गली और कूचे कूचे में इस प्रकार के काफ़ीहाउस हैं, जहां गरीब से अमीर तक सभी मौज उड़ाते हैं।

एक सप्ताह वियाना में रहने के बाद मैंने पैरिस जाने का निश्चय किया। पेरिस का सीधा दूसरे दर्जे का टिकट खरीद कर मैंने जाने की तैयारी करली। यहां के विश्वविद्यालय का एक विद्यार्थी मुझे रेल पर छोड़ने के लिये गया। रेल के थर्डक्लास के डिब्बे में बड़ी भीड़ रहती है, जैसे हिंदुस्तान में रेल के मुसाफिर कटघरे के अन्दर दर्वाजा खुलने तक खड़े खड़े कष्ट पाया करते हैं और प्लेटफ़ोर्म का दर्वाजा खुलने पर उसमें खूब धक्कम धक्का होता है इसी प्रकार का दृश्य वियाना में भी देखने में आया। मैंने समझ लिया कि आस्ट्रिया के लोग अभी सभ्य नहीं हुये। रेलवे कम्पनियों वाले यहां भी मुसाफ़िरों के साथ भले आदमियों जैसा बर्ताव नहीं करते। मुसाफिर बेचारे अपना अपना सामान लिये बहुत देर तक दर्वाजा खुलने की इंतज़ार में खड़े रहते हैं।

आखिर दर्वाजा खुला। लोग अपनी अपनी गाड़ियों की तरफ भागे। मुझे भी दूसरे दर्जे के एक छोटे से डिब्बेमें जगह मिल गई। उसमें दो औरतें और थीं। वे रोमानियां की रहने वाली यहूदने थीं। मा और बेटी दोनों पेरिस जारहीं थीं। बहुत शीघ्र मेरा उनके साथ परिचय होगया। अपनी टूटी फूटी जर्मन में मैं उनसे बातें करने लगा। कवि सम्राट डाक्टर रविन्द्रनाथ टागोर की पुस्तकों का अध्ययन उन दोनों रोमानियन औरतों ने किया था। वे मुझ से उनके विषय में बहुत सी बातें पूछतीं रहीं। हम लोग आपस में खूब दिल मिल गये।

स्टेशन पर हम लोगों को मालूम हुआ कि गाड़ी सीधी पेरिस नहीं जा सकेगी, क्योंकि स्विटजरलैन्ड की हद पर एल्पस् पर्वत में बहुत हिम पड़ जाने के कारण रेल का रास्ता बन्द हो गया है। हम लोग अब बड़ी दुविधा में पड़ गये। सांप छछूंदर वाली दशा हमारी हो गई। आखिर यही फैसला किया कि जहां तक रेल ले जा सके वहां तक चलना ही चाहिए। गाड़ी बर्फ के बीच में से धीरे धीरे जा रही थी। शीत के मारे हम लोग सुन्न हो गये, क्योंकि गाड़ी वालों ने डिब्बे गरम नहीं किये थे। आखिर बहुत कहने सुनने के बाद डिब्बे कुछ गरम हुए और रात इसी प्रकार बैठे बैठे कट गई। आस्ट्रिया वालों की यह रेलगाड़ी योरुप का नाम बदनाम करने वाली थी, लेकिन रेलवाले बेचारे कर क्या सकते थे। टाँकियों का पानी जम जाने के कारण पाखाने गन्दे हो रहे थे। खैर किसी तरह स्विटजरलैन्ड की हद के पास

इन्सब्रुक कस्बे में गाड़ी पहुंची और सब मुसाफिर गाड़ी से नीचे उतर गये। यहां से आगे पैरिस जाने के लिए जर्मनी के प्रसिद्ध शहर म्यूनिच होकर स्विटजरलैन्ड जा सकते थे, परन्तु यह रास्ता द्राविड़ी प्राणायाम का था। मजबूर होकर यही करना पड़ा। मेरे पास जो पासपोर्ट था उसके अनुसार मैं जर्मनी होकर पैरिस जा सकता था किन्तु उन बेचारी दोनों औरतों को अपना पासपोर्ट ठीक कराने के लिये इधर उधर भागना पड़ा। आज हवा बड़े वेग से चल रही थी और हिम भी खूब पड़ रहा था। रात का यहां एक होटल में ठहरे। इस होटल में कमरे के साथ नहाने का कमरा मिला जिसमें ठंडे और गरम पानी के नल टब में लगे रहते हैं। स्नान करने का बड़ा सुख मिलता है। बीच में ही पाखाना भी होता है जो जञ्जीर हिलाने से आप ही आप साफ सुथरा हो जाता है। कहने का तात्पर्य्य यह है कि ऐसे होटलों में पैसा तो जरूर ज्यादा लगता है लेकिन सुख भी पूरा मिलता है। मुझे इस कमरे का किराया चार रुपये एक रात के देने पड़े। बाकी खाने पीने का दाम अलग दुना पड़ा। दूसरे दिन सवेरे गाड़ी पर सवार होकर हम लोग म्यूनिच की ओर चल दिये।

म्यूनिच जर्मनी के बवेरिया प्रान्त की राजधानी है। यह आइजर नदी के किनारे पर बसा है और बर्लिन से दक्षिण पश्चिम की ओर तीनसौ दस मील के फासले पर है। एल्पस् से पचीस मील उत्तर की ओर खूबसूरत बाजारों और भव्य अट्टालिकाओं से सुसज्जित यह शहर देखने योग्य है। जर्मनी की वर्तमान ग्रीम–

परस्त पार्टी का यह अड्डा है। यहीं कैसर के बड़े बड़े जनरल रहते हैं। बवेरिया कृषिप्रधान प्रान्त होने के कारण बर्लिन की मजदूर पार्टी की राजनीति का सख्त विरोधी है। यहाँ अच्छे अच्छे गिर्जे और महल बने हैं। यहा पर बड़ा अच्छा विश्वविद्यालय है जिस में हजारों विद्यार्थी पढ़ते हैं, एक शाही पुस्तकालय है जो जर्मनी में अपने ढंग का एक ही है, इसमें चित्रकला का अद्वितीय संग्रह है।

रात के दस बजे हम लोग म्यूनिच पहुंचे। बर्फ के पिघलने के कारण गलियां सब लतपत हो रहीं थीं। स्टेशन के पास के होटल म पहुंच हम लोगों ने रात काटी। सवेरे स्विटजरलैन्ड को जाने वाली रेलगाड़ी में बैठ कर यहाँ से कूच किया और जर्मनी से निकल गये, इसके लिये ईश्वर को धन्यवाद दिया। जर्मनी में भयकर महगी है, इसी कारण कोई बिदेशी वहा रहना नहीं चाहता। म्यूनिच से ज्यूरिच पहुचने में स्विटजरलैन्ड की हद पर हमें एक झील को अग्निबोट द्वारा पार करना पड़ा। ज्यूरिच पहुंच कर स्टेशन के होटल में भोजन किया और पेरिस के लिये रवाना हो गये। दूसरे दिन सवेरे मैं फिर सात महीनेके बाद लौट कर पेरिस आ गया।

चौबीसवाँ अध्याय

पेरिस में एक मास

"पेरिस" इस नाम में बड़ी आकर्षण शक्ति है। इसनाम का उच्चारण करते ही भांति भांति के भाव और विचित्र ऐतिहासिक चित्र आंखों के सामने घूमने लगते हैं। संसार के किसी शहर का इतना गहरा सम्बन्ध मानव जीवन के साथ नहीं है जितना कि फ्रान्स की राजधानी इस पेरिस नगर का। ससार में करोड़ों मनुष्य हैं जिन्होंने पेरिस देखा है परन्तु प्रत्येक के हृदय में अपनी अपनी भावना के अनुसार इस सलौने नगर की मूर्ति विराजमान है। जिस विकास का व्यक्ति होगा उसे उसी दर्जे की चीजें यहां मिलती हैं। बड़े से बड़े विद्वान् को फ्रान्सीसियों की यह इन्द्रपुरी अपनी तरफ खींचती है और बड़े से बड़ा विषय-भोगी तो बिना बुलाये ही प्रकाश के पतंग की तरह इस पर बलिदान हो जाता है। लाखों आत्मायें इस नगर को देखने के लिये वर्षों इसकी माला जपती रहती हैं और ईश्वर से प्रार्थना करती हैं कि उन्हें पेरिस के दर्शन हों,वे बड़े परिश्रमसे यहां का सुख भोगने के लिये धन संग्रह करती हैं,हजारों विद्यार्थी पेरिस विश्वविद्यालय में भर्ती होने के शुभ दिन की बाट बड़ी उत्सुकता से जोहते रहते हैं और सहस्रों युवतियां अपने सुन्दर मुख की छटा दिखाने के लिये पेरिस के सामाजिक जीवन रूपी नदी में गोता लगाने

के लिये ऐसी तड़पती रहती हैं जैसे पानी बिना मछलियां। मानवीय स्वभाव के प्रत्येक दर्जे का दृश्य यदि किसी को देखना हो तो उसे पेरिस जाना चाहिए। पेरिस वर्त्तमान स्वतन्त्रता के युग की माता है, यह पाश्चात्य सभ्यता के नवीन आविष्कारों की जन्म दाता है। भूमण्डल का करोड़ों रुपया किसी न किसी बहाने इस नगर की ओर खिंचा चला आता है। सचमुच पेरिस फ्रांस की कामधेनु है, निसंदेह यह उनका कल्पवृक्ष है।

पेरिस में आने का यह मेरा तीसरा अवसर था। पहिले सन् १९११ के जून मास में मैं यहां आया था। अमेरीका से लौटती बार भारत आते समय मैं यहा एक सप्ताह के लिये ठहरा था। उस समय यह क्रान्तिकारी भारतवासियों का केन्द्र था। देशभक्त विनायक दामोदर सावरकरजी के पकड़े जाने की ऐतिहासिक घटना के बाद क्रान्तिकारियों का उत्साह कुछ भंग होगया था, पर फिर भी वे अपनी विषम योजना में लगे हुए थे। पंडित ठाकुरदास, मि० चट्टोपाध्याय और मेडम कामा अपनी अपनी शक्ति अनुसार पार्टी के सगठन करने में मशगूल थे। पण्डित श्यामजी कृष्ण वर्म्मा का प्रभाव कुछ कम हो चुका था। उस समय वे लोग मुझे योरुप में ही रखना चाहते थे और उनकी इच्छा थी कि मैं पार्टी की साहित्य सम्बन्धी सेवा करू। परन्तु मेरे विचार इन लोगों से नहीं मिलते थे, मैं रिपब्लिकन तो हूं पर इन जैसा क्रान्तिकारी नहीं, मैंनेकभी भी सरकारी अफसरों की हत्याद्वारा देश स्वतंत्र करने के विचार को स्वीकार नहीं किया, कैलीफोर्निया में

भी मैं जर्मनी का प्रवासी भारतवासियों के गदर प्रोपगण्डा के साथ सहमत नहीं हुआ, क्योंकि मैंने इतिहास के अध्ययन करने से यह बात अच्छी तरह मालूम है कि किसी देश में क्रान्ति करने के लिये वहां की जनता में स्वतन्त्रता के लिए प्रगाढ़ प्रेम और गुलामी के लिये अत्यन्त घृणा का होना परमावश्यक है। जिस देश की जनता गुलामी की बेड़ियों से मुहब्बत करती हो उस साक्षात् ब्रह्मा भी आजाद नहीं कर सकता, इस कारण मेरा सिद्धान्त सदा से यह रहा है कि सबसे पहिले जन साधारण में मानवी अधिकारों की शिक्षा का प्रचार होना चाहिये, ताकि जनता स्वराज्य की लड़ाई की महत्ता को समझ सके। उस समय मैंने पेरिस के ऐतिहासिक घटनास्थल देखे थे और महाप्रतापी नैपोलियन की समाधि आदि प्रसिद्ध इमारतों को भी देखा था, लेकिन पेरिस जैसा मनोरंजक स्थानों से पूर्ण नगर, चार चार दिन में नहीं देखा जा सकता, इस कारण पेरिस देखने की लालसा मेरे अन्दर बनी रही। बारह वर्ष के बाद सन १९२३ के मई मास में मैं फिर पेरिस आया पर आंखें अच्छी न होने के कारण कुछ न देख सका। सात महीने के बाद दिसम्बर के आखीर में, मैं फिर पेरिस पहुंचा। इस समय वहां के भारतीयों की दशा सन् १९११ जैसी नहीं रही। क्रान्तिकारियों की जो पार्टी सन् १९११ में थी उसका अब यहां पर नामोनिशान बाकी नहीं रहा। मैडम कामा वृद्धा हो गई हैं। उनकी अवस्था किसी प्रकार की हलचल में पड़ने योग्य नहीं रही, इस लिए वे शान्ति से काल व्यतीत कर रही हैं।

अधिकांश भारतीय अपने मोतियों के व्यापार में मस्त हैं। वे किसी क्रांतिकारी निरर्थक हलचल में भाग लेना नहीं चाहते, दूसरों के कड़ुवे अनुभव से उन्होंने कुछ शिक्षा प्राप्त की है। यदि ब्रिटिश कौंसल स्वतन्त्र देशों के नागरिकों की तरह इनके अधिकारों की रक्षा करने में यत्नशील रहे तो, व्यापारी लोग शायद कभी स्वराज्य की बात भी न करें। भारत से पेरिस और पेरिस से भारत जाने आने में जब कभी इनका किसी अंग्रेज द्वारा अनादर हो जाता है, या पासपोर्ट मांगते समय किसी सी० आई० डी० के अफसर की खुशामद अथवा ब्रिटिश कौंसिल के दरवाजे पर तपस्या करनी पड़ती है तो उनके हृदयों से सर्द आहें अवश्य निकलने लगती हैं। वे अपने अन्तःकरण में कहने लगते हैं, "काश कि हमारा देश भी स्वतन्त्र होता!"

पेरिस का यह ऋतु सैर के अनुकूल नहीं था। जनवरी के महीने में यहाँ प्रायः नित्य वर्षा होती है, आकाश मेघों से आच्छन्न रहता है और खासी सर्दी पड़ने लगती है, प्राकृतिक सौन्दर्य के लोप हो जाने के कारण घूमने फिरने को दिल नहीं चाहता। सैलानी यात्री इस ऋतु में दक्षिण फ्रांस या इटली में चले जाते हैं। कभी कभी भगवान भास्कर कुछ घंटों के लिये भले ही विरहवश पेरिस निवासियों के सुन्दर मुख देखने के लिये झांकने लगते हैं, पर बेचारे पेरिस निवासियों को उनके विराटस्वरूप का दर्शन नहीं होता। ऐसी दशा में मैं पेरिस की अन्य इमारतों तथा विशेष स्थानों का वर्णन न कर उन अत्यन्त उपयोगी बातों

का जिकर करूंगा जो भारत से पेरिस जाने वाले भाइयों के लिये अत्यन्त लाभकारी हैं, हां दो एक खास स्थानों का संक्षिप्त वर्णन पाठकों के मनोरंजनार्थ इस लेख में अवश्य कर दूंगा।

सबसे पहिली बात जो मैं भारत से योरुप जाने वाले देशबन्धुओं को कहना चाहता हूं वह यह है कि भारत छोड़ने से पहिले वे फ्रान्सीसी भाषा अवश्य सीखलें। फ्रेन्च भाषा के ज्ञान के बिना योरुप की सैर का आनन्द कदापि नहीं मिल सकता। फ्रेन्च भाषा सारे योरुप में समझी जाती है। इसका जानने वाला सारे योरुप में बड़े मजे से घूम सकता है। अंग्रेजी भाषा का प्रचार योरुप में बहुत कम है। किसी किसी दुकान या होटल में अंग्रेजी बोलने वाले लोग मिल जाते हैं। धनवान अमरीकन घुमक्कड़ों की खातिर, उनकी जेबों से पैसा निकालने के लिये, होटल वाले बैंकों के क्लर्क और व्यापारी दुकानदार लोग कहीं कहीं अंग्रेजी जानने वाले मिल जाते हैं, लेकिन इस भाषा को शौक से कोई नहीं पढ़ता। फ्रेन्च भाषा को दूसरे देशों वाले बड़े अनुराग से पढ़ते हैं, क्योंकि यह योरुप के शिक्षित समुदाय की भाषा है और मौलिक साहित्य का खजाना है। अतएव मैं राष्ट्रीय स्कूलों और कालेजों के प्रबन्धकर्त्ताओं से सानुरोध निवेदन करूंगा कि वे फ्रेन्च भाषा को अपने यहां खास स्थान दें ताकि इसका प्रचार भारतवर्ष में हो जाय और हमारे देश में योरुप के मौलिक विचारों का प्रवाह बहने लगे। फ्रेन्च न जानने के कारण मुझे बड़ा पछताना पड़ा और योरुप जाने का उचित लाभ मुझे

नहीं मिला। पेरिस यूनिवर्सिटी के सुविख्यात संस्कृत के विद्वान् प्रोफ़ेसर सिलवियन लेवि के सिवाय मेरी किसी फ्रान्सीसी विद्वान् से भेंट नहीं हुई। प्रोफ़ेसर लेवि बौद्धधर्म के अत्यन्त प्रेमी हैं और अंग्रेजी अच्छी तरह बोल सकते हैं, इसी कारण मैं उनसे वार्त्तालाप का फ़ायदा उठा सका। यदि मुझे फ्रेन्च भाषा का ज्ञान होता तो मैं पेरिस के बड़े बड़े आचार्यों के भाषण सुन कर बहुत सी अमूल्य बातें ग्रहण करता और स्वयम् अपनी निरीक्षण शक्ति द्वारा जनसाधारण के बीच में घूम फिर कर अपने अनुभव की वृद्धि करता। मुझे अत्यन्त दुःख है कि मैं इस भाषा को सीख कर योरुप न गया। आगे को मैं ऐसी भारी भूल नहीं करूंगा।

पेरिस, स्त्रियों के रूप लावण्य का केन्द्र है, इस लिये यहां विषयभोग के एक से एक बढ़िया स्थान हैं। सैकड़ों राजे महाराजे और नव्वाब यहां आकर कामदेव के वशीभूत होकर अपना सर्वस्व खो बैठते हैं। हज़ारों धनवान नवयुवक, जिनके चेहरे गुलाब के फूल की तरह और जिनका शरीर सुन्दर सुडौल होता है, यहां आकर अपनी सारी सम्पत्ति खोकर कंगाल हो जाते हैं। इस दृष्टिसे पेरिस बड़ा भयकर नगर है। अतएव मैं दूसरी बात अपने देशबन्धुओं को सावधान करने के लिये लिखता हूं। बुलावर्ड में घूमते समय, बायें बोलेन (पेरिस का खूबसूरत उद्यान) में सैर करते वक्त तथा ओपेरा के निकट रात के समय जब कभी कोई गोरा, गन्दी तसवीरें दिखलावे, या पेरिसके मनोरम दृश्य दिखलाने

का महानी करे, या पथ प्रदर्शक बन कर नगर की सैर कराना चाहे तो कभी भूल करभी ऐसे पुरुषोंके साथ नहीं जाना चाहिए। गलियों में घूमते वक्त या बाग़ में टहलते समय, यदि कोई स्त्री रास्ते में बिना परिचय के मुस्कराकर बुलावे तो उसे साक्षात पिशाचनी समझ कर उससे दूर रहना चाहिए। मेरे पहली बार पेरिस जाने के समय, जब मैं अमरीका से लौट कर आया था, तो मुझे थामस कुक एन्ड सन्स के दफ़्तर के पास एक बदमाश ने गन्दी तसवीरें दिखला कर फंसाना चाहा था। मेरी जेब में उस समय तीस पौंड थे। यदि मैं उस दुष्ट की प्रलोभना में फँस जाता तो वह मुझे किसी बुरे स्थान पर लेजा कर मेरे कपड़े भी उतार लेता। परन्तु मैं तो बचपन से ही बड़ा सावधान रहा हूं और ऐसे पुरुष कभी मुझको खींच नहीं सके, इस लिये उस धूर्त का तिरस्कार करना मेरे लिये साधारण बात थी। अब कि बार भी पेरिस में बुलवार्ड में घूमते समय मुझे ऐसे लोग कई बार मिले। ये बराबर शिकार की तलाश में घूमते रहते हैं। लंडन और बर्लिन में पुलिस का अच्छा प्रबन्ध होने पर भी इस प्रकार के स्त्री पुरुष अजनबियों को अपने जाल में फसाने के लिये फेशनेबुल बाज़ारों में बराबर घूमते रहते हैं, पर पेरिस में तो इनकी बहुत अधिकता है। बिना किसी जान पहिचान के अनजान पुरुषके साथ रात के समय घूमने के लिए कभी नहीं जाना चाहिए।

यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि पेरिस में जाने वाले अजनबी पुरुष को कहां आकर ठहरना चाहिए? ऐसे भाइयोंकी सहूलियत

फेलिये मैं पेरिस के कुछ होटलों का नाम नीचे लिखता हूं ताकि रेल के स्टेशन पर उतरते ही मुसाफिर विना किसी दिक्कत के किसी अच्छे होटल में जा सके। इन होटलों में प्राय अंग्रेजी बोली जाती है—

(1) Angleterre d' VIIIe 91, rue de la Boetie
(2) Bachaumont IIe 18, Rue Bachaumont
(3) Brebant Et Beausejour IXe. 30–32 bd Poissonniore
(4) Britany IXe 3–5, rue St-Lazare
(5) Cayre's Hotel VIIe. Bd Raspail
(6) Cecilia VIIe. 7, rue d' Olivet
(7) Dieppe' (de) IXe 22, rue d' Amsterdam
(8) Family Hotel Xe 13, rue de Mazagran
(9) Franklin At Du Bresil IXe. 19, rue Buffault
(10) Grand Hotel Du Louvre Ier. 172, rue de Rivoli.
(11) Grand Hotel Du Rhone Ier. 3 et 5 rue J. J. Rousseau
(12) Grand Hotel De Russie IXe I rue Drouot
(13) Jena (d') XVIe 24–32, rue d' Jena.
(14) Levant (du) Ier. 27, rue C-des-P-Champs
(15) Massena 11, rue Bachaumon

उपरोक्त होटलों का लिस्ट देखने से पाठक समझ सकते हैं कि मैंने पेरिस के मध्यम दर्जे के होटलों के नाम दिये हैं। इनमें प्राय अंग्रेजी बोलने वाले देशों के यात्री जाकर ठहरते हैं। पेरिस नगर में दूसरे कई बड़ बड़े होटल हैं जहां धनवान अमरीकन और अभिमानी अंग्रेज मुसाफिर जाकर ठहरते हैं। मैंने उन होटलों का नाम यहां नहीं लिखा। यूरुप के महाभारत से पहले फ्रांसीसी सिक्के फ्रान्क का भाव एक पौन्ड स्टरलिंग के बीस फ्रान्क था, इस बार सन् १९२४ के जनवरी महीने में एक पौण्ड के नब्बे फ्रान्क मिलते थे, इसलिए कमरों की दर हमेशा बढ़ती घटती है। पेरिस जाने वाले भारतीय को होटल के प्रबन्धकर्त्ता के साथ पहले से पत्र व्यवहार कर कमरा ठीक कर लेना चाहिये। अगर होटल वाले को तारीख रेल का समय लिख दिया जाय तो वह अपना आदमी भेजकर मुसाफिर को आराम से होटल में ले जाता है, उसके लिये एक रुपया और खर्च लग जाता है। पेरिस का रहन सहन और खर्चा बम्बई से कम है। डबलरूम के अर्थ दो कमरे नहीं बल्कि एक कमरे में दो आदमियों के सोने के प्रबन्ध से मतलब है। मुसाफिर को बहुत से पौण्ड अपने साथ नहीं रखने चाहियें और किसी दूसरेके सामने भूलकर भी अपना बटुआ खोलकर दिखलाना उचित नहीं। संसार घूमने वाले मुसाफिर हमेशा अपने साथ Letter of Credit रखते हैं। इन के रखने से फायदा यह है कि जिस शहर में जितने रुपये की जरूरत पड़ती है उतना ही बैंकसे मिलजाता है। बम्बई या कलकत्ते

से चलते समय इस प्रकार की चिट्ठी किसी अच्छे बैंक से तो लेनी चाहिए। यदि अपने साथ साल दो साल का खर्च रखना हो तो अधिक रुपये को लंदन या पेरिस के किसी बैंक में साल या छ महीने के सूद पर जमा करा देना चाहिये। योरुप और अमरीका में अमीर मुसाफिरों को ठगने वाले बहुत लोग होते हैं, इसलिए उनसे सदा बचना चाहिए। जो लोग झूठी शेखी में आकर बड़ी फूं फां दिखलाते हैं और अपने रुपये की चर्चा दूसरों से करते रहते हैं वे अक्सर ठगे जाते हैं। संयम से रहने वाले और कम खर्च करने वाले को कोई नहीं ठगता। जो भारतीय वैष्णवी भोजन करते हैं उन्हें Rue Lafa: ntt के नम्बर ५६ को याद रखना चाहिए। उसके पास की गली शावोदां के आस पास भारतीय व्यापारी रहते हैं और वहां अच्छे होटल भी हैं। इन होटलों में रहने से शाकाहारी भारतीयों को अपने मतलब के लायक भोजनालय मिल सकते हैं।

अब ज़रा खर्च की सुनिये। यों तो पेरिस बादशाहों की नगरी है। रुपया फूकने वाले यहां लाखों रुपये योंही फूंक सकते हैं, ऐसे लोगों की बात छोड़कर पहिले हम उन लोगों को लेते हैं जो पहिले दर्जे के होटलों में ठहरना चाहते हैं, अच्छे अच्छे थियेटरों के तमाशे देखने के उत्सुक हैं, जो नाच तमाशों का मजा लूटना चाहते हैं; मोटरगाड़ी में बैठकर नित्य पेरिस के इर्द गिर्द चारों में घूमने के अभिलाषी हैं, ऐसे शौक़ीन लोगों का गुज़ारा पेरिस में दो पौण्ड अर्थात् तीस रुपये रोज़ाना के बिना नहीं हो सकता

जो मध्यम वृत्ति के मुसाफ़िर हैं, जो साफ़ सुथरे होटल और नीरोग भोजन खाकर बिजली की गाड़ियों, लारियों और लोकल रेलगाड़ियों द्वारा पेरिस की सैर करना चाहते हैं, जिनकी इच्छा पेरिस में छः महीने साल रहने की है, उनका गुजारा सात आठ रुपये रोज़ पर बड़ मजे में हो सकता है। जब नगर से वाकफ़ियत हो जाय तो मनुष्य का गुजारा और भी सस्ते में चल सकता है। पेरिस, ग़रीब, अमीर और मध्यम वृत्ति वाले सभी दर्जे के लोगों के रहने की जगह है, केवल वाकफ़ियत चाहिए।

पाठकों के लाभार्थ, यहां पर अब हम, पेरिस से योरुप के अन्य मुख्य मुख्य शहरों का फासला बतलाते हैं। पेरिस से लंदन का फासला २६० मील है, पेरिस से बेलजियम की राजधानी ब्रूसल्स दो सौ मील है, पेरिस से हालैन्ड की राजधानी एमस्टरडेम ३२५ मील है, पेरिस से स्विटज़रलैन्ड की राजधानी बर्न ३२७ मील है, पेरिस से जर्मनी की राजधानी बर्लिन ६६९ मील है, आस्ट्रिया की राजधानी वियेना पेरिस से ८६७ मील है, स्पेन की राजधानी मैड्रिड ९०९ मील है, इटली की राजधानी रोम ९१६ मील है, पुर्तगाल की राजधानी लिस्बन ११८७ मील है, रूस की राजधानी पीट्रोग्राड १७०० मील है, तुर्की की विख्यात नगरी क़ुस्तुन्तुनियां १९१३ मील है। यदि योरुप में से रूस को अलग कर दें तो बाकी सब देश मिल कर हमारे अकेले भारतवर्ष के बराबर होते हैं, पर भारतवर्ष के किसी भी शहर की आबादी पेरिस के बराबर नहीं। पेरिस की आबादी

२९ लाख से कुछ ज्यादा है और जल्द तीस लाख तक पहुंच जाएगी।

पेरिस में देखने लायक बहुत से स्थान हैं। इस शहर की चप्पा चप्पा जमीन ऐतिहासिक घटनाओं से भरी हुई है। जिन लोगों ने फ्रान्स की भयकर राज्यक्रान्ति का इतिहास पढ़ा है उनकी आखों के सामने पेरिस के उन दिनों की खूनी कहानी के रोमाचकारी दृश्य घूमने लगते हैं। जो मुसाफिर तीन चार दिन में पेरिस घूम कर देखना चाहता है उसके लिये बराबर ऐसे मोटर तय्यार रहते हैं जो उन ऐतिहासिक स्थानों में फिरते हुये बहुत जल्द उनका परिचय दर्शक को करा देते हैं, पर इसका नाम पेरिस देखना नहीं है। पेरिस देखना हो तो दो तीन महीने इस नगर में रहना चाहिए और सब स्थानों को ऐतिहासिक दृष्टि से देखना चाहिए। मैं यहां खास खास दर्शनीय स्थानों की लिस्ट दे देता हू ताकि पेरिस जाने वाले पाठक उससे लाभ उठा सकें। उन स्थानों के नाम ये हैं—

(1) Opera (2) Madeleine Church (3) Tuileries Gardens (4) Palaisde la legion d' Honneur (5) Quai D' Orsay (6) Palais Bourbon (chamber of Deputies) (7) Parc Monceau (8) The Etoile and arch of Triumph (Tomb of the unknown soldier) (9) Champs de mars (10) Eifal Tower (11) Ecole militaire (12) Monument of victor Hugo (13)

Palais du Trocadero (14) Pantheon de la guerre (15) Les invalides (16) The foreign office (peace conference) (17) Palaces of the Champselysees (18) Palais de l'elysees (Presidents residence) (19) Alexandre Bridge (20) Church of Saint-Germain (21) Monument of the admiral Colligny (22) The Bourse (Stock-Exchange) (23) Hotel des Postes (G P O) (24) Invalides (Napoleons Tomb) (25) The Palais de justice (Law Courts) (26) Sainte-Chapelle (27) Odeon, (National theatre) (28) Cathedral of Notre-dame

उपरोक्त अठाईस स्थान सैलानी महाशयों को अवश्य देखने चाहियें। पेरिस पाश्चात्य शिल्पकला के आधुनिक चमत्कारों का घर है। इसकी इमारतें यूनानी संस्कृति की शिल्पकला के ढंग पर बनाई गई हैं और पारखी दर्शक उनकी विलक्षण निर्माण कला को देखकर बनाने वाले कारीगरों के बुद्धि-वैचित्र्य की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता। पेरिस की जगत् प्रसिद्ध नाट्यशाला, ओपेरा, दर्शक के मन को मोह लेती है। बाजार के दोनों तरफ की भव्य इमारतें पेरिस निवासियों के सौन्दर्योपासक होने का पूरा प्रमाण देती हैं। सचमुच इन खूबसूरत इमारतों की एक जैसी कतारें आंखों को बड़ी ही भली मालूम देती हैं। योरुप के किसी भी नगर में गोथिक ढंग की शिल्पकला के ऐसे श्रेष्ठतम नमूने नहीं पाये जाते। कारीगरों ने इन अट्टालिकाओं के बनाने

में अपनी कारीगरी को खतम कर दिया है, अपनी सारी बुद्धि लड़ाकर, मस्तिष्क से नये नये नमूने निकाल, पुरानी गोथिक ढंग की शिल्पकला को पूर्णता पर पहुंचा कर बुद्धिमान अनुभवी कारीगरों ने पेरिस नगरी को कुबेर की अलकापुरी बना दिया है। नगर के गौरवस्तम्भ पुराने गिरजों की शोभा का तो कहना ही क्या, उनकी तेजश्री के कारण फ्रान्स की कीर्त्ति जगत् विख्यात है। पेरिस के बुलावार्ड, बाग बगीचे, उसके विहार स्थल, उसके थियेटर, उसकी रंगीली गलियां, उसकी मनमोहक संगीतशालायें, उसके सुखस्नान-गृह, सभी चीजें ऐसी हैं जिनके कारण सभ्य देशों के शौकीन श्रीमन्त, सालमें एक दो बार यहां आकर निवास करते हैं।

प्रकृतिदेवी ने फ्रान्स पर बड़ी कृपा की है। फ्रेन्च लोगों के खाने लायक अनाज पैदा करनेवाली काफी उपजाऊ भूमि इस देश में है, उपयोगी धातुओं की खानें भी हैं, जलवायु बड़ा नीरोग है, शीत और उष्ण दोनों प्रकार की सुहावनी ऋतुयें हैं। भूमध्य सागर की तरफ दक्षिण फ्रान्स में खिलखिलाती धूप और नीला आकाश खूब देखने में आता है। उत्तरीय फ्रान्स में बर्फ की बहार रहती है। प्राकृतिक दृश्य भी बड़े मनोहर हैं। पेरिस नगर में सेन नदी शहर के बीच में से होती हुई बहती है, ग्रीष्मऋतु में इस नदी की सतह पर छोटी छोटी नौकायें नाचती हुई दिखाई देती हैं। बादेबोलेन तो पेरिस का हीरा है, जिसका हर एक पेरिस निवासी को उचित अभिमान है। यह

बाग बर्लिन के टियरगारटेन से बहुत बड़ा है। इसमें एक बड़ी सुन्दर झील है। प्रत्येक रविवार को घूमनेवालों की यहां बड़ी भीड़ रहती है। यों तो बारहों महीने पेरिस में लोग घूमने आते हैं पर गर्मियों में तो यहां बड़ी बहार रहती है। भारतवर्ष से फरवरी के महीने में रवाना होकर, मार्च में इटली घूमते हुए, मई में पेरिस पहुंचना चाहिए।

❀ ❀ ❀ ❀

मैं यहां दिसम्बर के आखीर में आया और जनवरी के आखीर तक यहां रहा। भाषा न जानने के कारण मेरे दिलकी बात दिल में ही रह गई—मैं यहां के विद्वानों का कुछ भी सत्संग न कर सका। आंखों के बड़े प्रसिद्ध डाक्टर को आंखें दिखलाने के बाद मैंने यहां से भारत लौटने का निश्चय किया। लाइडट्रीनो कम्पनी के दफ्तर में जाकर टिकट खरीद लिया। अमरीकन एक्सप्रेस कम्पनी के दफ्तर में जाकर अपनी चिट्ठी पत्री का नया पता लिख दिया। यह कम्पनी थोमस् कुक की तरह व्यापारी कम्पनी है। इसकी एजन्सियां योरुप के सभी बड़े शहरों में है, बम्बई में भी इसकी शाख है। मेरी डाक इसी की मारफत आती थी। इसके डाक विभाग का इन्तजाम बड़ा अच्छा है। डाक मंगवाने का इनके यहां कुछ देना नहीं पड़ता। मुसाफिर इनके यहांसे टिकट खरीदते हैं पौन्ड भुनाते हैं, फ्रान्क खरीदते हैं, तथा और बैंक सम्बन्धी काम कराते है। उसी से इनको भी आमदनी होती है। इस कम्पनी की मारफत डाक मंगवाने वाला मुसाफिर इनके यहां किसी प्रकार

का सौदा करने पर याच्य नहीं किया जाता, मुसाफिरों को पूरा आराम देकर उसकी जेब से पैसा निकालना यही लोग जानते हैं, इसमें इनका कमाल है। मैं पेरिस में अपने भारतीय बन्धुओं के यहां भोजन करने प्राय जाया करता था। किसी किसी दिन फल ही खा लेता था। फल यहां सस्ते मिलते हैं। इस प्रकार एक महीना पेरिस में बड़े आनन्द से बीता। मैंने इटली जाने की तिथि निश्चित करली और एक दिन सबेरे नौ बजे की गाड़ी से इटली की ओर रवाना होगया।

—×—

पचीसवाँ अध्याय

रोम की सैर

अभी काफी अन्धेरा था। सुबह के साढ़े चार बजे होंगे। गाड़ी जिनोआ शहर के स्टेशन पर पहुंची। मैं पहले दर्जे की गाड़ी में सो रहा था। गाड़ी के नौकर ने मुझे पन्द्रह मिनट पहले जगा दिया था, इस लिये गाड़ी के स्टेशन पर पहुंचते ही मैंने अपना सामान कुली को दिया और गाड़ी से नीचे उतरा। जब कुली सामान लेकर स्टेशन से बाहर आने वाले दरवाजे से निकलने लगा तो एक रेलवे कर्मचारी ने उसे रोका। पूछने पर मालूम हुआ कि वह मेरा सामान तुलवाना चाहता है। सामान तुलवाने पर जो कुछ उसने मांगा मैंने दे दिया। सारी यात्रा में यह पहला

ऐसा अनुभव था, इसलिये मैंने जान लिया कि इटली की गवर्नमेन्ट का इन्तज़ाम अच्छा नहीं, यहां धींगा मस्ती खूब चलती है।

यह कुली मुझे यहां सेवाय (Savoy) होटल में छोड़ कर चला गया। होटल के कर्मचारी ने मुझे कमरा दिखलाया और मैंने उसमें अपना डेरा डंडा लगा लिया। दिन चढ़ने पर विचित्र दृश्य देखने में आया। होटल से बाहर जाकर मैं क्या देखता हूं—नीला आकाश, सूर्य्य का निर्मल प्रकाश—देख कर मेरा मन प्रफुल्लित हो उठा। जैसा मौसम फ़रवरी मास में लाहौर में होता है वैसा ही यहां मुझे मिला। जब घूमने के लिये आगे बढ़ा तो अपने देश के शहरों की तरह तंग गलियां और बाज़ार! सांवले रंग के लोगों की यहां कमी न थी। जब आगे चौक में जाकर पहुंचा तो यहां के विहार-स्थल में पड़ी हुई लोहे की बेंचों पर धूप सेकते हुए लोग मिले। मैं भी एक बेंच के किनारे बैठकर यहां की लीला देखने लगा। बिजली की गाड़ियां मज़े में इधर उधर जा रही थीं, मोटर गाड़ियां भी मस्ताना चाल से चलती थीं। पता लगा कि प्रकृति का कितना प्रभाव मनुष्य के स्वभाव पर पड़ता है। जिनोआ में लोगों को किसी बात की जल्दी नहीं, उनकी गाड़ियां, घोड़े और मोटरें आन तोड़ रफ्तार से नहीं चलतीं, उनके मकान भी पुराने ढर्रे के हैं, उनमें आधुनिक वैज्ञानिक सुखों का प्रवेश भली प्रकार नहीं हुआ,—तो भी स्वतन्त्र देश होने के कारण इटली का यह शहर हमारे शहरों से बहुत साफ़ सुथरा है।

सेवाय होटल का मालिक बड़ा बेईमान निकला। उसने मुझे मनमाना ठगा और जब मैंने इसकी शिकायत की तो वह मेरा उपहास कर बोला, "जाओ, अपने कौन्सल के पास जाकर शिकायत करो।" ठंडी सांस भर कर मैंने उत्तर दिया, "यदि मेरा देश स्वतन्त्र होता तो आप ऐसा निष्ठुर व्यवहार न कर पाते।" वह बिल्कुल पशु था, इसलिए उसके साथ अधिक बात न कर, मैं अपना सामान उठा नजदीक के होटल में चला गया। आदमी नावाकफियत के कारण मारा जाता है। जिनोआ स्टेशन से पांच चार मिनट के रास्ते पर कई होटल हैं, जहाँ दस से पन्द्रह लीरे तक किराया देने से अच्छा कमरा मिल जाता है। पास ही रोटी, दूध, फल आदि की दुकानें भी हैं, अच्छे और सस्ते भोजनालय भी पास ही हैं, जहा मजे से पेट भर सकता है, लेकिन सेवाय होटल में अंग्रेजी बोली जाती है, वहां के नौकर अंग्रेजी समझते हैं, ठंडे और गरम पानी के नल भी कमरे में ही हैं, इसलिए अंग्रेजी बोलने वाले धनी मुसाफिर सब वहीं भागे जाते हैं और एक के चार चार देते हैं। इसी कारण सेवाय होटल के इटालियन मैनेजर का दिमाग सातवें आसमान पर रहता है। जिनोआ जाने वाले भारतीयों को स्टेशन के पास के किसी सस्ते होटल में जाना चाहिए।

× × × × ×

यूरोप में इटली अपने ढंग का निराला देश है। यूरोप का यह भाग तो है ही पर ऐतिहासिक दृष्टि से इस देश की महत्ता बहुत बड़ी है। इस छोटे से देश में यूरोप का सर्वप्रधान और

सर्वमान्य रोम नगर स्थित है। टाइबर नदी के किनारे, संसार का अत्यन्त प्रसिद्ध यह नगर, यूरोप घूमने वाले इतिहास के विद्यार्थी के हृदय में बड़े ऊंचे भाव उत्पन्न करता है। एक प्रकार से सदियों का इतिहास, सैकड़ों वर्षों की सभ्यता इस नगर के गर्भ में छिपी हुई है। इटली का राष्ट्र, वर्तमान युग में यद्यपि बिलकुल नया है परन्तु इस प्राचीन नगर के कारण इसका स्थान संसार की पुरानी सभ्यताओं में एक खास दरजा रखता है। जिस समय हम 'रोम' इस शब्द का उच्चारण करते हैं तो उसके साथ बड़े बड़े साम्राज्यों का प्राचीन इतिहास सामने खड़ा हो जाता है। अपने समय में रोम के बड़े बड़े बादशाहों ने दूर दूर जाकर विजय पताका उड़ाई और ईसाई युग में रोम के पोप सम्राटों से भी बढ़कर शक्तिशाली हुए, जिनका निर्विवाद प्रभुत्व सदियों तक यूरोप के राष्ट्रों पर रहा।

हम यहां पर जगद्विख्यात रोमन सेनापति जूलियस सीज़र अथवा रोमन धर्म के गौरवपूर्ण इतिहास की बात लिख कर अपने पाठकों का समय नहीं लेंगे। हम यहां पर केवल आधुनिक इटली राष्ट्र के विषय में दो चार बातें लिख कर रोम के दर्शनीय स्थानों का वर्णन करेंगे। रोम इटली की राजधानी है। सन् १८६० ई० तक इटली छोटी छोटी . रियासतों, प्रान्तों, और सूबों में विभक्त था, जो एक दूसरे के विरुद्ध बराबर लड़ा करते थे। जो दशा राजपूताने की किसी काल में थी, वही अवस्था इटली की थी, परन्तु ईश्वर ने इस छोटे से देश पर दया

की। देशभक्त गैरीबाल्डी ने, अपने अदम्य उत्साह और ईश्वर पर असीम श्रद्धा से, अपने देश के मुर्दा लोगों में जान फूंक दी। उन्होंने ऐसे वीरताके कार्य किये कि निराशा में डूबे हुए इटालियन आशावादी बन गये और अपने पूज्य नेता के झंडे के नीचे आकर उन्होंने अपने देश को आस्ट्रिया और फ्रांस के पंजे से मुक्त किया। गैरीबाल्डी यद्यपि रोमनगर का निवासी नहीं था परन्तु रोम उसको बड़ा प्यारा था। रोम की पुरानी समृद्धि और उसका प्राचीन गौरव, इस इटेलियन देशभक्त के हृदय को अपना शैदाई बनाता था और उसी प्रगाढ़ प्रेम के वशीभूत होकर गैरीबाल्डी ने अपने यौवन काल में आजादी का झंडा बुलन्द किया। उसके विरुद्ध इकट्ठी हुई शक्तियां बड़ी भयावनी थीं और ऐसा मालूम होता था कि वे उसका नाश कर जायेंगी, पर अपने देश के भविष्य मे जिस पुरुष का अतुल विश्वास हो और जिसके हृदय कमल मे अपने देश की निष्काम भक्ति हो, विरोधी शक्तियां भला उसको भयभीत कर सकती हैं ? कदापि नहीं। अपने मुट्ठी भर साथियों के साथ इस वीर शिरोमणि ने अपने जबर्दस्त शत्रुओं के साथ खुली लड़ाई छेड़दी। आजादी की लड़ाई मे विद्युत प्रगति होती है, वह सोई हुई आत्माओं को जागृत करती है, वह साधन हीनों को साधन सम्पन्न बनाती है, वह असम्भव को सम्भव कर दिखाती है। इसमें छिपे छिपे बम गोले फेंकने का कोई काम नहीं। यह उन बहादुरों का खेल है जो खुली लड़ाई मे अपना सर्वस्व आजादीके लिये होम करदेते हैं,

और उनकी देखा देखी दूसरी आत्माएँ भी खम ठोक कर आगे बढ़ती हैं और आज़ादी की लड़ाई को पूरा करती हैं।

आज़ादी की लड़ाई शुरू होगई। रोम के प्रसिद्ध स्थान वेटिकन (Vatican) के निकट की तंग गलिया खूनसे लाल होगई, लाशों के ढेर लग गये, सिसकते हुये आदमियों से गलियां भर गई। देशभक्त शेरों की तरह लड़े। मुट्ठी भर आदमियो ने भगीरथ काम कर दिखलाया, क्योंकि वे जानते थे कि आज़ादी की लड़ाई पवित्र लड़ाई है। गैरीबाल्डी के अपने देशबन्धुओं ने कई बार उनके साथियों के साथ विश्वास घात किया, फिर पर भी वीरों ने हिम्मत न हारी, क्योंकि आज़ादी की लड़ाई जब एक बार शुरू होजाती है तो फिर वह कभी बन्द नहीं होती जब तक कि विजयश्री की प्राप्ति न हो। असख्य कठिनाइयों का मुकाबिला कर आखिरकार देशभक्तों को उनके पुनीत परिश्रम का फल मिला। उसी रोम में, जहां गैरीबाल्डी ने अपने साथियों के सहित इतना कष्ट पाया था, जहां उसे पराजय का मुंह देखना पड़ा था, उसकी मूर्ति घोड़े पर सवार जैनीकुलम के टीले पर विराजमान है। इस मूर्ति के दर्शन दूर से होते हैं। इस पवित्र मूर्ति के दर्शन करने से पता चलता है कि एक आत्मा जिसका हृदय अत्यन्त विश्वास से परिपूर्ण हो और साथ ही जिसमें दुर्दमनीय वीरता हो, क्या कुछ नहीं कर सकती।

× × × × × ×

जिनोआ से मैं प्रात:काल की गाड़ी से रोम की तर्फ रवाना हुआ जिनोआ स्टेशन खासा बड़ा है। जिस प्लेट-फ़ार्म पर रोमा लिखा था, मैं उसी पर गाड़ी के इन्तज़ार में टहलता रहा। ठीक नौ बजे गाड़ी चली। जिनोआ से रोम तकका रास्ता बड़ा रमणीक है और उसके दृश्य बड़े मनोहर हैं। रेल समुद्र के किनारे किनारे घूमती हुई गई है। पहाड़ों के कई बोगदों को पार करती हुई, ऊबड़ खाबड़ रास्तों के नज़ारे दिखलाती हुई गाड़ी जा रही थी। इटली के लोग निर्धन हैं। पहाड़ी ज़मीन अधिक है, फलों की आमदनी ज्यादातर होती है। गावों और शहरों के स्टेशनों को देखता हुआ मैं रात को रोम पहुंचा। अदन होटल में मेरे अमरीकन मित्र मिस्टर जेम्स की धर्मपत्नी ठहरी हुई थीं, उन्हीं का भेजा हुआ होटल का आदमी मुझे लेने के लिये स्टेशन पर आया। उसके साथ मैं होटल में पहुंचा।

यह होटल भी धनी अमरीकनों और गोरे अंग्रेज़ों का प्यारा है। यहां के नौकर भी अंग्रेज़ी बोलते हैं। सब काम अंग्रेज़ी ढंगपर होता है। होटल वाले भी यहां मुसाफ़िरों की हजामत अच्छी तरह करते हैं और एक एक के चार चार लेते हैं। जिस कमरे में मैं जाकर ठहरा, वह इतना अच्छा न था, फिर भी होटल के मैनेजर ने एक रात ठहरने के चालीस लीरे अर्थात् छ रुपये ले लिये। मिसेज़ जेम्स ने मेरे साथ बड़ा अच्छा बर्ताव किया और दूसरे दिन मेरे साथ जाकर मेरे लिये स्टेशन के पास
पेतरिया नाम के होटलमें कमरा दिला दिया। यह

पसन्द आया, क्योंकि इसके पास ही भोजनालय भी था यहा मुझे पचीस लीरे में अच्छा कमरा और सुबह का नाश्ता भी मिला। अब मेरा रहने का ठीक ठाक होगया तो मैंने रोम घूमने का प्रोग्राम बनाया। पाठक अब मैं आप को पहिले, संसार के सब से बड़े गिर्जे—सेन्ट पीटर—और रोमन कैथोलिक लोगों के अत्यन्त पुनीत स्थान, वेटिकन, की सैर कराता हूं।

से अपनी जान छुड़ा कर गिरजे के अन्दर पहुंचे । गिरजे में परम शान्ति विराज रही थी, बिलकुल चुप, जरा भी आहट नहीं । गिर्जे के मध्य में खड़े हो कर जब हम लोगों ने सेन्ट पीटर की समाधि की तरफ देखा तो बेशुमार झिलमिलाती हुई ज्योतियां दिखाई दीं, जो सदा जला करती हैं, साथ ही हम लोग जब चार सौ फीट ऊंचे गुम्बद के नीचे खड़े होकर चारों ओर देखने लगे तो संसार के इस सब से विशाल गिरजे के तेज और वैभव का बड़ा गहरा प्रभाव हमारे हृदयों पर पड़ा । उस गुम्बद के मनोहर आकार और उसकी अत्यन्त उत्कृष्ट ढंग की निर्दोष बनावट को देख कर दर्शक के मुख से बनाने वाले कारीगर के बुद्धि कौशल को 'धन्य ! धन्य !!' कहे बिना नहीं रहा जाता। कहते हैं कि इस उत्कृष्ट ढंग की कारीगरी का सारा श्रेय इटली के सुप्रसिद्ध शिल्पकला विशारद, माइकल एनजिलो, को है ।

इस गिरजे में, सर्वोत्कृष्ट विमल कीर्तिस्तम्भ, मेडोना का है । इसे भी माईकल एनजिलो ने बनाया है । हृदय में अत्यन्त करुणा जनक भावों को उत्पन्न करने वाली यह दिव्य- मूर्ति है । इसमें कुशल कारीगर ने माता मरियम की बैठी हुई तसवीर, जो ईसा मसीह के मृत देह को अपने घुटनों पर सम्भाले हुए है, बड़ी कुशलता से दिखलाई है । पूरे क़द की सफ़ेद संगमरमर की बनी हुई इन मूर्तियों के बनाने में शिल्प कला विशारद ने अपने तमाम कौशल को खतम कर दिया है ।

दाहिनी तरफ घूमने से सामने पीतल की एक प्रतापवान बैठी हुई मूर्ति दिखाई देती है। यही सेन्टपीटर की जगत् विख्यात बड़ी मूर्ति है। सेन्टपीटर सिंहासननुमा कुर्सी पर बैठे हुए हैं और अपना दाहिना हाथ उठा कर अपने भक्तों को आशीर्वाद दे रहे हैं। यह मूर्ति अत्यन्त प्राचीन मालूम होती है। रोम के नागरिक तथा उसके इर्द गिर्द के ग्रामों के लोग रविवार तथा अन्य त्यौहारों के दिन इस सन्त की मूर्ति के दर्शन करनेके लिए आते हैं। शहर के ग़रीब लोग तथा अन्य दुःखी जन तीर्थ यात्रा की तरह इस गिरजे में दूर दूर से आते हैं और यहां आकर बड़ी श्रद्धा से धूप दीप जलाते हैं। स्त्रियां और पुरुष बड़ी संख्या में इन अवसरों पर यहां इकट्ठे होते हैं, और बड़ी श्रद्धा से मूर्ति के दाहिने पैर को चूमते हैं। माताएं अपने छोटे छोटे बच्चों को यहां लाकर सन्तका आशीर्वाद लेती हैं। इन श्रद्धालुओं की संख्या इतनी अधिक आती रही है कि इस ठोस पीतल की मूर्ति का पैर अपने भक्तों के निरन्तर चुम्बन से बहुत घिस गया है। मैंने जिस समय इसे देखा तो मुझे अपने देश के अत्यन्त धर्म-श्रद्धालु लोगों की याद आगई। मिसेज़ जेम्स ने हंस कर कहा—"मैं तो इस मूर्ति के पैर को कभी न चूमूं। दूर से दर्शन करने के भाव को तो मैं समझ सकती हूं, पर इस पीतल को चूमना कैसा।" मैंने धीरे से कहा—"यह रोमन केथोलिक देश है, यहांके लोग अभी तक मिथ्या विश्वासों से निकले नहीं। मुसलमान इसी तरह असवद पत्थर को चूमते हैं और मूर्तिपूजक हिन्दू अपनी मूर्तियों को।"

× × × ×

इसी गिरजे के पास दुनियां का सब से बड़ा राजमहल खड़ा है। यह है पोप का निवास-गृह वेटिकन (Vat can) । पोप इस महल से बाहर नहीं जाता, इसी के अन्दर सारा जीवन बिताता है। पांच सौ वर्षों से यह पोपों का निवास स्थान है और यह इतना लम्बा चौड़ा है कि निश्चित रूप से इसके कमरों की संख्या यहां के लोग नहीं बता सकते। कहते हैं कि यह वृहत् प्रासाद तेरह एकड़ से अधिक भूमि घेरता है।

मिसज जेम्स, उसकी दो लड़कियां, और मैं, सब मिलकर इस महल को देखने गए। इसके अन्दर सिस्टिन नामक बड़ा खूबसूरत गिरजा है। पन्द्रहवीं शताब्दी के अखीर में यह बनाया गया था। इसकी छत पर अद्भुत चित्रकारी की गई है। छः बरस तक यहाँ चित्रकला विशारद माइकल एंजिलो ने, अपनी तन्दुरुस्ती, आराम, और शक्ति का बलिदान करके अपनी चमत्कारिणी कला की महिमा दिखलाई है। बड़ी ऊंची सीढ़ी पर स्थित तख्ते पर लेट कर, चित्रकार, छत को चित्रित किया करता था। कितना प्रेम और कैसी श्रद्धा !

इस भवन में देखने लायक़ बेशुमार चीजें हैं पर इतना समय हमारे पास नहीं था। कैसी कैसी बहुमूल्य भेंटें, कैसे कैसे सुन्दर तैल चित्र, कैसी कैसी कारीगरी के नमूने यहां पर हैं, रोमन कैथोलिक बादशाहों, धनिकों, कारीगरों और भक्तोंने जो कुछ अत्यन्त श्रद्धा से दिया है वह सब अजायब घर के तौर पर यहां भिन्न भिन्न कमरों में दिखलाया गया है।

इस महल के बाहर के दरवाजों पर सिपाहियों का पहरा रहता है। इटली यद्यपि रोमन कैथोलिक देश है और रोमन कैथोलिक लोगों का सबसे बड़ा आचार्य्य—ईसा मसीह का प्रतिनिधि—यहाँ रहता है, पर राजनीति में मजहब का दखल न होने के कारण, पोप का कुछ सीधा प्रभाव इटली की गवर्नमेंट पर नहीं है। पोप अपने आपको किसी राष्ट्र के आधीन नहीं समझता, इसलिये उसका दुनियावी राज्य केवल इस महल की दीवारों तक ही परिमित है, हां, संसार के रोमन कैथोलिक लोगों का जो संघ है वह पोप को अपना रूहानी गुरु मानता है। इस कारण सभी स्थानों की रोमन कैथोलिक जनता पर पोपका प्रभाव क़ायम है।

× × × × ×

कोलोसियम, रोम का एकबड़ा प्रसिद्ध स्थान है। रोमसाम्राज्य की विभूति का यह स्मारक है। अब इसके खंडरात पड़े हैं। इन्हीं को देखने के लिये सभ्य देशों से हजारों दर्शक यहां आते हैं। अपने वैभव काल में रोम साम्राज्य कितना महान रहा होगा, इसका अनुमान इसे देखने से होता है। कहते हैं जिस समय रोम बादशाह टीटस जेरूसलम फतह करके आया तो प्रजा ने उसे खेल तमाशा दिखलाने वाले एक बड़े भवन के निर्माण करने के लिये कहा। रोमन लोग शारीरिक बल के बड़े उपासक थे। खास कर ऐसे खेल तमाशे जिनसे बड़ा जोश और बड़ा उत्साह उत्पन्न हो। अपनी प्रजा को प्रसन्न करने के लिये रोमन बादशाह ने बारह हजार गुलाम, भवन के निर्माण करने में, लगा दिये,

और एक ऐसी रंगभूमि तय्यार करवाई जिसमें कम से कम पचास हजार आदमी बैठ सकें। इसके बनने में आठ वर्ष तो लगे परन्तु इमारत एक अद्वितीय बन गई। सारा रोमन कला कौशल इसमें खर्च कर दिया गया और दूर दूर से क़ीमती पत्थर लाकर इसमें जड़ दिये गये। जब महाराजाधिराज टीटस ने इस रंगभूमि का उद्घाटन किया तो सौ दिन तक निरन्तर खेल तमाशे होते रहे। रोमन लोगों के खेल तमाशे क्या थे—हिंसक जन्तुओं के साथ लड़ाई—दर्शक लोग हिंसा पूर्ण खेलों को देख कर बड़े प्रसन्न होते थे। सभी दर्जेके लोग इन खेलों को देखनेके लिये आते थे। उत्सवों और छुट्टियों के दिनों में ये खेल तमाशे होते थे। जंगली जानवरों के रखने की भटें अभी तक विद्यमान हैं और किस तरह से वे यहां से निकल कर रंगभूमि में आते थे, यह सब इन खंडरात को देखने से पता चलता है।

× × × × ×

रोम नगर में पानी की बड़ी अधिकता है। पहाड़ों पर से आने वाले जल के चश्मे बहुत हैं, मूर्त्तियां बना कर सुन्दर फव्वारे बनाए गये हैं, चौकों में ऐसे कई फव्वारे हैं। इस वैज्ञानिक युग में बिजली की गाड़ी के बिना सभ्य देश के नागरिकों का गुजारा नहीं चल सकता। पुरानी तंग गलियों को जरूरत के अनुसार चौड़ा कर इस प्राचीन शहर के अन्दर बिजलीकी गाड़ी का प्रबन्ध किया गया है। घूमने वाले दर्शक को एक मूर्ति खास तौर से मकानों पर दिखाई देती है, वह है माता मेडिया का चित्र, जिस के नीचे

ही बालक दूध पीते हुए दिखलाये गये हैं। दन्त कथा है कि रोम शहर को बसाने वाले राजकुमार रमूलस और रेमुस थे, जिनको उनके अत्याचारी सम्बन्धी ने शिशुकाल में टाइबर नदीमें फेंक दिया था। दैव ने इन दोनों बालकों की रक्षा की और वे जल प्रवाह के कारण टाइबर नदी के बाहर आ पड़े। पानी उतर जाने के बाद एक मादा—भेड़िया वहां आई और उसने अपने स्तनों से दोनों बालकों को दूध पिलाया। इसी जगह पेलटिन नाम की पहाड़ी पर रोम शहर की बुनियाद इन राजकुमारोंने रक्खी और अब वहां उस स्थान पर मादा-भेड़िया की मूर्ति खड़ी है। यह मूर्ति रोमन लोगों को बड़ी प्यारी है। इस लिये वे अपने मकानों के दरवाजों और दीवारों पर रोम नगर के जन्म दाता, उन राजकुमारों की प्राणदाता, मादा-भेड़िया की मूर्ति चित्रित करते हैं।

मैं रोम में कई दिन रहा। लिगूरिया पेलरिया होटल रेल के स्टेशन के पास है। इसका मैनेजर बड़ा ईमानदार है। उसका प्रबन्ध भी बड़ा अच्छा है। इस होटल में किसी प्रकार की चोरी होने का भय नहीं, क्योंकि होटल के नियम के अनुसार कोई बाहर का आदमी किसी के कमरे में नहीं जा सकता। जिसे अपने किसी मित्र प्रेमीसे मिलना हो तो वह उससे दरवाजेके पासके बैठने उठने वाले कमरे में मिल सकता है। ऐसा नियम होने के कारण कोई अजनबी बदमाश किसी बहाने से होटल में नहीं घुस सकता। मैं यहां पर बड़े आनन्द से रहा। रोममें देखने लायक

बहुत से स्थान हैं। भारतीय यात्री को चाहिए कि वह किसी जानकार के साथ इस शहर में भ्रमण करे, क्योंकि इटली में चोरी अधिक होती है और अजनबी मुसाफिरों की जेबें बहुधा कट जाती हैं। मैंने रोम छोड़ने का निश्चय कर लिया और एक दिन प्रात काल की गाड़ी से नेपल्स की ओर रवाना हुआ।

× × × × ×

नेपल्स इटली का प्रसिद्ध ऐतिहासिक बन्दरगाह है। भूमध्य सागर के किनारे पर स्थित, अपनी विचित्र अर्द्ध चन्द्राकार खाड़ी से सुशोभित यह नगर दर्शकों के चित्त को लुभा लेता है। खाड़ी का दृश्य अत्यन्त रमणीक है। सूर्य के निर्मल प्रकाश में खाड़ी की शोभा और भी बढ़ जाती है। समुद्र के किनारे ऊंचे टीले पर खड़े होकर सामने दक्षिण-पूर्व दिशा की ओर देखिए, वह सामने ४०२० फीट की ऊंचाई पर वीसुवियस पर्वत के अग्निमुख से निकलती हुई ज्वालाओं का धुआं आकाश की ओर जारहा है। दूरबीन से इसे भली प्रकार देख सकते हैं। सामने की खाड़ी में भिन्न भिन्न देशों के जहाज आकर ठहरते हैं। निर्धन इटली के पुत्र और पुत्रियां रोजगार की तलाश में यहीं से देश देशान्तरों को जाते हैं। समुद्र के किनारे किनारे बड़ी अच्छी सड़क गई है और उस सड़क पर बड़े बड़े होटल, सुन्दर आरामगाहें और भव्य इमारतें बनी हुई हैं। हवाखोरी के शौकीन सैलानी लोग मोटर और गाड़ियों में बैठ कर सुबह शाम खाड़ी की शोभा देखते हैं। पैदल घूमने वाले घुमक्कड़ों का तो कहना ही क्या। शाम के समय

उनके कुछ के कुछ सड़क पर घूमते हुए दिखाई देते हैं। आज कल तो जाड़ा है इस लिये बहुत अधिक विदेशी सैलानी यहां नहीं थे, पर गर्मियों में तो नेपल्स में बड़ी भीड़ रहती है। बलकान रियासतों के निवासी, कुस्तुन्तुनियां के तुर्क, और इर्द गिर्द के लोग उन दिनों यहां आजाते हैं और समुद्र की शीतल पवन का आनन्द लेते हैं। फल फलहारी यहां सस्ता मिल जाता है, शुद्ध दूध की भी यहां कोई कमी नहीं, आठ नौ आने में एक वक्त का भोजन आनन्द से होजाता है, इस लिये मध्यम वृत्ति के लोग यहां आजाते हैं।

रोम से आने वाली गाड़ी रात के समय नेपल्स पहुंची। स्टेशन पर कुछ प्रेमी सज्जनों ने मेरा स्वागत किया और एक होटल में ले जाकर ठहराया। एक रात मैं उस होटल में रहा, दूसरे दिन समुद्र के किनारे पर स्थित एक विशाल होटल में चला गया। मेरा कमरा सबसे ऊपर की छत पर होने के कारण खाड़ी का पूरा दृश्य देखने के लिये अत्यन्त उपयुक्त था। भगवान भास्कर जी खिड़की द्वारा मेरे कमरे में प्रवेश कर मुझसे भेंट करने आते थे। आज कल यहां जाड़े की ऋतु है, पर इतना जाड़ा नहीं जो सताने वाला हो। अपने यहां जितनी जनवरी में सर्दी पड़ती है उतनी सर्दी यहाँ थी, और यह महीना था फरवरी का। मैं घंटों खिड़की में बैठ कर खाड़ी की शोभा देखा करता। नेपल्स में मैं एक सप्ताह तक रहा। भारत लौटने की तारीख निकट आगई।

आइये पाठक, अब घर लौट चलें। यूरोप आये दस महीने होगये। खूब घूम लिया, खाक छानली, लेकिन योरुप

बहुत से स्थान हैं । भारतीय यात्री को चाहिए कि वह कि
जानकार के साथ इस शहर में भ्रमण करे, क्योंकि इटली
चोरी अधिक होती है और अजनबी मुसाफिरों की जेबें बहु
कट जाती हैं । मैंने रोम छोड़ने का निश्चय कर लिया औ
एक दिन प्रात काल की गाड़ी स नेपल्स की ओर रवाना हुआ

× × × × ×

नेपल्स इटली का प्रसिद्ध ऐतिहासिक बन्दरगाह है । मूम
सागर के किनारे पर स्थित, अपनी विचित्र अर्द्ध चन्द्राकार खा
से सुशोभित यह नगर दर्शकों के चित्त को लुभा लेता है । खा
का दृश्य अत्यन्त रमणीक है । सूर्य के निर्मल प्रकाश में खा
की शोभा और भी बढ़ जाती है । समुद्र के किनारे ऊंचे टीले
खड़े होकर सामने दक्षिण-पूर्व दिशा की ओर देखिए, दह सामने ४०
फीट की ऊंचाई पर वीसुवियस पर्वत के अग्निमुख से निकल
हुई ज्वालाओं का धुआ आकाश की ओर जारहा है । दूरबीन
इसे भली प्रकार देख सकते हैं । सामने की खाड़ी में भिन्न भि
देशों के जहाज आकर ठहरते हैं । निर्धन इटली के पुत्र औ
पुत्रियां रोजगार की तलाश में यहीं से देश देशान्तरों को जा
हैं । समुद्र के किनारे किनारे बड़ी अच्छी सड़क गई है और उ
सड़क पर बड़े बड़े होटल, सुन्दर आरामगाहें और भव्य इमारतें
बनी हुई हैं । हवाखोरी के शौकीन सैलानी लोग मोटर औ
गाड़ियों में बैठ कर सुबह शाम खाड़ी की शोभा देखते हैं । पैद
घूमने वाले घुमक्कड़ों का तो कहना ही क्या । शाम के समय

घूम आया, लेकिन जहां का पासपोर्ट नौकरशाही ने उपयुक्त क़रार दिया था वहां मैं गया ही नहीं। इससे आप यह समझ सकते हैं कि भारत सरकार के नौकरों की पालिसी कितनी कमीनी और गन्दी है। इसी काम को वे लोग कैसी खूबसूरती से कर सकते थे और अपनी उदारता से वे दिखला सकते थे कि अपने ईमानदार विरोधीके साथ वे न्यायोचित व्यवहार कर सकते हैं, परन्तु मदान्ध नौकरशाही को यह शिक्षा कौन दे। मेरा काम होगया, जहां मुझे जाना था वहां मैं हो आया, जिनसे मैंने मिलना था उनसे मैं मिल लिया, इससे नौकरशाही के हाथ क्या आया? इस मेरी मिसाल से भारत सरकारके छोटे दिमाग़का पता अच्छी तरह लग जाता है।

अच्छा, योरुप में मैंने क्या ख़ास बातें देखीं? यूरोप जाने वाले भारतीय यात्री को अपनी ओर आकर्षित करने वाली ख़ास बातें कौन सी हैं? मनुष्यको ज्ञान मुक़ाबिले से मिलता है। जब कई वस्तुओं का आपसमें एक दूसरेके साथ मुक़ाबिल किया जाय, गुण दोष परखे जायें तो मनुष्य अच्छे और बुरे पदार्थ की पहिचान कर सकता है, इस लिये पर्यटन, मुसाफिरी अथवा भ्रमण बड़ी भारी शिक्षा है। जो बातें पचासों पुस्तकें पढ़ने से नहीं मिलतीं, वे एक भ्रमण से आप ही आप बड़ी खूबी से मालूम हो जाती हैं। मैंने जो कुछ सीखा है उसका बहुत बड़ा हिस्सा भ्रमण द्वारा मुझे प्राप्त हुआ है। इस बार की यात्रा के अनुभवका अकेले ही लाभ न लेकर मैं अपने देश वासियोंको भी उसका भागीदार बनाना

छोड़ने से पहले एक बार निहावलोकन कर लेना ठीक ।
नेपल्स नगर में, भूमध्य सागर के किनारे, खड़े होकर ए
सारी स्थिति पर विचार करलें, योरुप की सभ्यता—उसके
पर भी नजर डाल लेनी चाहिए। फिर निश्चिन्त होक
की तरफ मुंह करेंगे।

छब्बीसवाँ अध्याय

सिंहावलोकन

पाठक, योरुप आने का मेरा मुख्य कारण आंख का इलाज था। यदि मोगामें मेरी दाहिनी आख का अच्छी तरह इलाज होजाता तो मार्चके अन्त तक मैं आख के झगड़े से निवट जाता। गवर्नमेंट ने मुझ पर १४४ धारा लगा कर मेरे दुःख को बढ़ा दिया और जब मैं फर्रुखाबाद से मुरादाबाद जा रहा था, उस समय मेरी दाहिनी आख बिलकुल खराब हो चुकी थी। गवर्नमेंट के अत्याचार का परिणाम आपने देखलिया। जब जर्मनी जाने का प्रश्न उपस्थित हुआ, तब भी नौकरशाही ने मेरे रास्तेमें बाधायें उपस्थित करनी चाहीं, लेकिन वह निरर्थक। आपने यह भी देख लिया कि मुझे इगलेन्ड जाने का पासपोर्ट मिल गया था। उस पासपोर्ट पर खास तौर से लिखा था, "Valid for England only अर्थात् इंगलेन्ड के लिये ही उपयोगी"। उसी पास पोर्ट को लेकर मैं जर्मनी, फ्रांस, स्वीडन, आस्ट्रिया, और इटली

घूम आया, लेकिन जहां का पासपोर्ट नौकरशाही ने उपयुक्त क़रार दिया था वहां मैं गया ही नहीं। इससे आप यह समझ सकते हैं कि भारत सरकार के नौकरों की पालिसी कितनी कमीनी और गदी है। इसी काम को वे लोग कैसी ख़ूबसूरती से कर सकते थे और अपनी उदारता से वे दिखला सकते थे कि अपने ईमानदार विरोधीके साथ वे न्यायोचित व्यवहार कर सकते हैं, परन्तु मदान्ध नौकरशाही को यह शिक्षा कौन दे। मेरा काम होगया, जहां मुझे जाना था वहां मैं हो आया, जिनसे मैंने मिलना था उनसे मैं मिल लिया, इससे नौकरशाही के हाथ क्या आया? इस मेरी मिसाल से भारत सरकारके छोटे दिमाग़का पता अच्छी तरह लग जाता है।

अच्छा, योरुप में मैंने क्या ख़ास बातें देखीं? यूरोप जाने वाले भारतीय यात्री को अपनी ओर आकर्षित करने वाली ख़ास बातें कौन सी हैं? मनुष्यको ज्ञान मुक़ाबिले से मिलता है। जब कई वस्तुओं का आपसमें एक दूसरेके साथ मुक़ाबिल किया जाय, गुण दोष परखे जायें तो मनुष्य अच्छे और बुरे पदार्थ की पहिचान कर सकता है, इस लिये पर्यटन, मुसाफ़िरी अथवा भ्रमण बड़ी भारी शिक्षा है। जो बातें पचासों पुस्तकें पढ़ने से नहीं मिलतीं, वे एक भ्रमण से आप ही आप यकी सूझी से मालूम हो जाती हैं। मैंने जो कुछ सीखाहै उसका बहुत बड़ा हिस्सा भ्रमण द्वारा मुझे प्राप्त हुआ है। इस बार की यात्रा के अनुभवका अकेले ही लाभ न लेकर मैं अपने देश वासियोंको भी उसका भागीदार बनाना

चाहता हूं। घूमने में प्राय मैं गुणों को देखा करता हूं, दोषों कं नहीं ,क्योंकि मैं दुनिया का कूड़ाकर्कट जमा करनेके लिये बाहः नहीं जाता, ऐसा काम करने वाले दूसरे बहुत हैं। मैं यहा पर उन गुणों को क्रमश लिखता हु जो इस बार यूरोप घूमने में मेरे देखने में आए हैं।

पहली बात जो एक भारतीय यात्री को यूरोप की भूमि पर पैर रखते ही तत्काल अपनी ओर आकर्षित करती है वह है यूरोप का खुला सामाजिक जीवन। भारतवर्षमें एक तो हिन्दू मुसलमानों का पारम्परिक भेद, फिर हिन्दुओं के भिन्न भिन्न वर्णों में सैकड़ों उपवर्ण,फिर उन उपवर्णों में आपस के ऊच नीच के भाव, ये ऐसी बातें हैं जिनका यूरोप में कुछ भी चिन्ह दिखाई नहीं देता, इसलिये यूरोप का खुला सामाजिक जीवन हृदय को अत्यन्त आकर्षित करता है। भारतवर्ष में कोई ऐसी सभा, समाज अथवा क्लब नहीं,जहां देश के निर्धन से लेकर अमीर तक इकट्ठे मिल कर बैठें, आपस में एक दूसरे के साथ भाइयों का सा वर्ताव करें, एक दूसरे से अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध पैदा कर देश की स्थिति पर विचार करें; थोड़े में यह कि कोई ऐसा सीमेन्ट सामाजिक जीवन मे मौजूद नहीं है कि जो भारतीय राष्ट्र को भली प्रकार संगठित कर सके। यूरोप के शहरों मे काफीहाउस, होटल, और क्लब ऐसे स्थान हैं जहा सब स्थिति के लोग आपस मे मिलते, बैठते, खाते, पीते और सभी प्रकार के आवश्यक विषयों की चर्चा करते हैं।

साधारण से साधारण मजदूर बड़े बड़े विद्वानों से हिल मिल सकता है और उनकी विद्वत्ता से पूरा लाभ उठा सकता है। इसके विपरीत भारतवर्ष के जन साधारण कोई भी अवसर अपने नेताओं से घनिष्ट सम्बन्ध पैदा करने का नहीं पा सकते। हमारा सामाजिक जीवन ऐसा अस्वाभाविक, ऐसा संकुचित, और ऐसा दोषपूर्ण है कि इसको संगठित करना असम्भव सा प्रतीत होने लगता है। मनुष्य एक सामाजिक सभ्य है। उसका धर्म कर्म, उसका वेद शास्त्र, उसकी फिलासफी, सब कुछ सामाजिक जीवन के अन्दर छिपा हुआ है। इस लिए जिस देश के लोग जितनी ज्यादा बाधायें एक समुदाय को दूसरे समुदाय से घनिष्ट सम्बन्ध होने मे रखते हैं जितने जियादा भेद उनके बीच में एक दूसरे को अलग करने वाले हैं, जितने जियादा रस्मो रियाज उनकी अलग अलग बिरादरिया, उपजातियां और फिरके बनाते हैं, उतना ही ज्यादा वह देश फूट के जहरीले फल चखता रहता है। यूरोप ने बड़े जद्दो जहद के बाद अपनी इन कमजोरिया को दूर किया है और अपने आपको भली प्रकार संगठित कर लिया है। क्या भारतवर्ष के लोग यूरोप का अनुकरण कर अपने सामाजिक दोषों को दूर करने की चेष्टा करेंगे ?

दूसरी बातजो एक भारतीय यात्रीको यहां अत्यन्त प्रसन्नकरती है वह है स्वतन्त्रता देवी के साक्षात दर्शन। अपने देश मे उसे छोटी छोटी बातों के लिये वेइज्जती सहनी पड़ती है और पग पग पर उसके आत्माभिमान को जख्मी किया जाता है। यह बात

उसे इटली, फ्रांस, और जर्मनी आदि देशों मे घूमते समय बिल-कुल देखने मे नहीं आती; हाँ, इंगलेन्ड में जो लोग घूमने जाते हैं उन्हें वहाँ कभी कभी भोंडे ऐंग्लो इन्डियनों से मुटभेड़ हो जाती है और भारतवर्ष की गुलामी के भयावने दृश्य उनकी आँखों के सामने खड़े हो जाते हैं। इंगलेण्ड को छोड़ कर यूरोप के और किसी देश में रंग का पक्षपात नहीं। सभी देशों में यात्री आज़ादी से घूम फिर सकता है। स्वतन्त्रता का जो आत्म-विश्वास, स्वतन्त्र जाति के बच्चों में देखने में आता है उसका आनन्द सच-मुच अलौकिक है। स्वेज़ नहर पार कर, भूमध्य सागर में घुसते ही, यात्री एक नए वातावरण का अनुभव करने लगता है। वह देखता है कि चारों तरफ़ गोरे ही गोरे स्त्री पुरुषों की बस्ती है। वे उसे काट खाने को नहीं दौड़ते बल्कि सभ्यता से हर एक बात का उत्तर देते हैं। गोरे चमड़े का जो कुछ भी डर उसके अन्दर घुसा रहता है वह सब निकल जाता है और वह सोचने लगता है कि क्या मैं अपने देश को ऐसा स्वतन्त्र नहीं बना सकता? आज़ाद स्त्री पुरुषों की बातें उसके कानों में पड़ती हैं और वह चौंक कर इधर उधर देखने लगता है। ठंडी सांस भरकर वह कहने लगता है—"हे ईश्वर! हमको ऐसी आज़ादी कब नसीब होगी?" जब शहरों से बाहर निकल कर फ्रांस और जर्मनी के गाँवों में घूमता है तो उसकी आखें और भी खुलती हैं और वह चकित हो कर कहने लगता है—"क्या मैं सतयुग के स्वप्न देख रहा हूँ? क्या गाँव के लोग ऐसे प्रसन्न और ऐसे खुशहाल!" जब घूमता घामता किसी यूनीवर्सिटी में पहुंच जाता है तो उसके आश्चर्य

की सीमा नहीं रहती। वह कहने लगता है—"बौद्ध काल के विश्वविद्यालयों के तो खण्डहर ही हमारे देश में हैं पर यहां तो सरस्वती की मूर्त्ति के साक्षात् दर्शन होते हैं।" उसके आंसू नहीं रुकते। वह ईश्वर से प्रार्थना करता हुआ कहता है—"करुणानिधे! क्या कभी स्वतन्त्र भारत के यत्न इस प्रकार के विश्वविद्यालयों की रचना करेंगे और क्या कभी हमारे कलियुग का अन्त होगा!"

तीसरी बात है राजनैतिक शिक्षा का अत्यन्त प्रचार। यूरोप में शिक्षा का प्रचार बहुत बढ़ा हुआ है। भारतीय यात्री शहरों में घूमते समय स्थान स्थान पर मजदूरों, स्त्रियों, दुकानदारों और किसानों को सामाचार पत्र पढ़ते हुए देखता है। चारों ओर चैतन्यता दिखाई देती है। जन साधारण अपने देश की गवर्नमेन्ट के कार्य्यों में बड़ी दिलचस्पी लेते हैं और संघ-बद्ध हो कर सरकारी अत्याचारों का मुक़ाबिला करते हैं। हर एक स्त्री और पुरुष अपने अधिकारों के विषय में कुछ न कुछ ज्ञान रखता है और नागरिकता के कर्त्तव्यों को समझने की चेष्टा करता है। समाचार पत्रों की लाखों प्रतियां जन साधारण के हाथों में जाती हैं और वे उनके द्वारा अपने आपको काल की गति के अनुसार बनाने की चेष्टा करते हैं। जिस शिक्षा से देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक दशा सुधरे उसी शिक्षा के प्रचार का प्रबन्ध उनकी गवर्मेन्ट करती है और प्रजा भी गवर्नमेण्ट के साथ सहयोग कर अपने देश को उन्नत बनाने का भरपूर प्रयत्न करती है। भारतवर्ष के लोग अविद्या के गहरे गढ़े में गिरे हुए हैं और कोई भी

धूर्त जनता को बहका कर अपना स्वार्थ सिद्ध कर सकता है। यहां राजनैतिक शिक्षा का प्रचार न होने के कारण जन साधारण नालायक लीडरों द्वारा बेतरह ठगे जाते हैं। मुसलमान लोग पोलिटीकल शिक्षा न होने के कारण छोटी छोटी बातों के लिए दंगे करते हैं। यूरोप की राजनैतिक शिक्षा ने धर्मान्धता के बन्धनों को ढीला कर दिया है और यहां के मनुष्य देश की आज़ादी को सब से प्यारा और सर्व श्रेष्ठ धर्म समझते हैं। गुलाम का कोई मजहब नहीं होता, वह तो केवल बोझा ढोने वाला पशु है। यूरोप घूमने वाला भारतीय यात्री इस बात का भली प्रकार समझ लेता है कि भारतवर्ष की सभी बीमारियों को दूर करने वाली यदि कोई तालीम है तो वह राजनैतिक शिक्षा ही है। जब तक हिन्दुस्तान के लोगों में राजनीति का प्रचार नहीं किया जाता तब तक हिन्दू मुसलमानों में एकता हो नहीं सकती। इस लिये सब से पहिले पूर्ण शक्ति लगा कर देश में राजनीतिक शिक्षा का प्रचार करना चाहिए।

यूरोप वालों की चौथी बात जिसे देख कर चित्त अत्यन्त आल्हादित होता है, वह है उनकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की पूजा। कोई किसी के घरेलू झगड़ों में दखल नहीं देता। कोई किसी के प्राईवेट कामों में 'दाल भात में मूसर चन्द' नहीं बनता। सब कोई एक दूसरे के निजी जीवन की स्वतन्त्रता को आदर की दृष्टि से देखते हैं, और उसमें दखल देना अनुचित समझते हैं। भारतवर्ष में दो आदमी यदि आपस में बातें करते हों तो तीसरा आदमी बिना

घुलाए वहां आकर खड़ा हो जाता है और बातें सुनने लगता है। भारत में लोग एक दूसरे के प्राईवेट जीवन में दखल देना मानो अपना कर्त्तव्य समझते हैं और बिना मतलब एक दूसरेकी नुक्ता-चीनी करते रहते हैं।

समाज में यह दोष संघशक्ति के लिये विषवत है। यूरोप में कोई आदमी कैसा ही खाए, कैसा ही पीये, कैसा ही आचार रक्खे, दूसरे आदमी उसमें कुछ दखल नहीं देते, जब तक कि उस व्यक्ति का आचरण समाज में अशान्ति अथवा बुराई फैलाने वाला नहीं होता। वे इस नियम को 'तुम दूसरे के साथ ऐसाही व्यवहार करो जैसा कि तुम चाहते हो कि दूसरा तुम्हारे साथ करे' अमल में लाने की चेष्टा करते हैं और एक दूसरे की बुराइयां तलाश करने में अपना समय नहीं गंवाते। जिस आदमी में जो गुण है वे उस गुण को राष्ट्र के फ़ायदे के लिये उपयोग में लाते हैं और बाक़ी बातों की ओर ध्यान नहीं देते। यदि कोई पुरुष किसी दूसरी स्त्री के साथ विषय भोग करता है, लेकिन है वह अर्थशास्त्र का पण्डित, तो उसके अर्थशास्त्र के पाण्डित्य का लाभ वे लोग ले लेते हैं, वे उसकी विषय भोग की कुटेव के कारण उसके गुण का त्याग नहीं करते। भारतवर्ष में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की जड़ पर कुल्हाड़ा लगा हुआ है और हरएक मनुष्य अपने अवगुणों को न देख दूसरे के दोषों को ही तलाश करता रहता है। बहुत से पुरुष तो यहां तक पतित होगए हैं कि वे अपने ही देशवासियों को बल पूर्वक अत्यन्त ही नीच अवस्था में रख

चाहते हैं और उनको रत्तीभर भी स्वतन्त्रता देना नहीं चाहते। बहुत से ऐसे नीच हैं कि वे दूसरों की चिट्ठियां चोरी से पढ़ लेते हैं और दूसरों की गुप्त बातों का नाजायज़ फ़ायदा उठाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। यदि दो मित्र एक समय में एक दूसरे के साथ घनिष्ट सम्बन्ध रखते हैं तो ज़रा सी बात में लड़ाई होने पर एक दूसरे का माथा फोड़ने को तय्यार हो जाते हैं। ये बातें यद्यपि देखने में बहुत तुच्छ मालूम होती हैं पर सामाजिक संगठन के लिये विघातक हैं। इसलिये भारतवर्ष के लोगों को व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का सम्मान करना सीखना चाहिये ताकि हम एक दूसरे के अधिकारों का आदर करें और छोटी छोटी बातों के लिये लड़ने की आदत से बचें।

यूरोप में घूमने वाले भारतीय यात्री को वहाँ पाँचवीं बात जो देखने में आती है वह है सचरित्रता की नई कसौटी। अपने देश में तो भंगी से छू जाय तो भ्रष्ट, मुसलमान से स्पर्श हो जाय तो भ्रष्ट, प्याज़ खा लिया तो भ्रष्ट, मांस खा लिया तो महापापी, इसी प्रकार छोटी छोटी बातों से लोगों का चरित्र बिगड़ जाता है। दिन भर झूठ बोलने वाला, अपने पड़ोसियों का गला काटने वाला, झूठे मुक़द्दमे लड़ाने वाला फ़रेबी मुसलमान, यदि पांच वक्त नमाज़ पढ़ लेता है तो वह बड़ा भलामानस दीनदार समझा जाता है। हमारे देश में सचरित्रता, बाहर के ढोंग, खाने-पीने और तोते की तरह आयतें और मन्त्र रटने में मानी जाती है। यूरोप में सचरित्रता की कसौटी इन थोथी बातों पर निर्भर

नहीं। यहां यदि मनुष्य समय का पावन्द है, प्रतिज्ञा कर वचन नहीं हारता, मित्रों के साथ विश्वासघात नहीं करता, डरपोक नहीं, स्त्रियों की प्रतिष्ठा करता है, अवसर में अपनी जान लड़ा देता है, व्यवहार में सच्चा है, और देश के साथ द्रोह नहीं करता तो वह मनुष्य सचरित्र माना जाता है। मांस खा लेने, लहसन प्याज इस्तेमाल करने से पुरुष का चरित्र नहीं बिगड़ता—अलबत्ता इन वस्तुओं के दुरुपयोग से शरीर को हानि हो सकती है। खाने पीने का सम्बन्ध व्यक्ति के अपने निज के जीवन के साथ है। असल में सचरित्रता का सम्बन्ध मनुष्य के उन कामों से है जिनका प्रभाव सीधा समाज के दूसरे सभ्यों पर पड़ता है। यदि उसके किसी काम से दूसरों को सीधा नुक़सान पहुंचता है तो वह काम सचरित्रता का विरोधी है। जिन कार्यों से सामाजिक संगठन को धक्का लगे, जिनसे समाज की शक्तियाँ बिखर जायँ, जिनसे समाज की आर्थिक अवस्था बिगड़े, जिनसे समाज में स्वार्थी पुरुषों की वृद्धि हो, जिनसे एक दूसरे के अभिकारों पर कुल्हाड़ा लगे, और समाज नपुंसकों का समुदाय बन जाय, ऐसे काम सचरित्रता के शत्रु हैं। इसलिए भारतवर्ष से बाहर जाने वाला यात्री यूरोप में आकर सचरित्रता की नई कसौटी देखता है। उसे वहां बड़े बड़े ईमानदार आदमी देखने में आये हैं जो दिन में चार बार मांस खाते और शराब पीते हैं। वह यह बात देखता है कि खाने पीने का सम्बन्ध देश के जलवायु पर बहुत अधिक निर्भर है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह पुरुष

सर्वश्रेष्ठ है जो महात्मा गांधीजी की तरह अपने भोजन को सात्विक बनाकर फिर सच्चरित्रता के सद्गुणों को धारण करके दिखलाता है, पर खाने पीने की छोटी बातों को बड़ा बना कर सच्चरित्रता के असली गुणों का बलिदान कर देना सर्वथा निन्दनीय है। भारतवर्ष के लोगों ने चरित्र सगठन के मुख्य गुणों को तो छोड़ दिया और खाने पीने के आडम्बरों को पकड़ लिया। इन्हीं कारणों से यूरोप के मुट्ठीभर मांस शराब उड़ाने वाले लोग करोड़ों भारतीयों पर शासन करते हैं,क्योंकि उन मुट्ठीभर लोगों में सामाजिक संगठन कीअद्भुत शक्ति है।

छठी बात है खाने पहिनने की एकता। इटली के किसी बन्दरगाह पर पैर रखते ही यूरोप की पोशाक दिखाई देती है। यह वेष सारे यूरोप में प्रचलित है। हम कह सकते हैं कि यूरोप का पहरावा एक है और उसके खाने पीने का ढग भी एक जैसाही है। फ्रांस में कुछ खाद्य पदार्थ फ्रांसीसी कौमी ढग पर बनाए जाए, इटली में इटेलियन ढग के कुछ अधिक मिर्चें डालकर, जर्मनी में कुछ थोड़ा जर्मन ढग उसमें आजाय, और रूस में कुछ रूसी रुचि के अनुसार—यदि ये सब बातें तोल कर देखी जायँ तो पता लगता है कि यूरोप के सब देशों में 'खाने पहरन' की बहुत अधिक समता है। घुमक्कड़ यात्रियों को एक देश से दूसरे देश में घूमने में कुछ भी कष्ट मालूम नहीं होता। छूतछात का बखेड़ा न होने के कारण यात्री यूरोप के एक छोर से दूसरे छोर तक बड़े आनन्द से घूम सकता है। कहीं बिस्तरा लेजाने की

आवश्यकता नहीं; थोड़े से पहनने के कपड़े साथ लेकर मुसाफिर मज़े से गुज़रान कर सकता है। हां, रुपया अपने पास अवश्य होना चाहिए।

सातवीं बात सफाई की है। यूरोप प्रकृतिका उपासक है। एक तो ईश्वर ने रंग गोरा दिया और फिर उसे सुन्दर रखने का शौक़। यूं तो कश्मीर के लोग बड़े गोरे होते हैं पर मैंने कश्मीर में जाकर कश्मीरियों को बड़ा गन्दा पाया। यूरोप में भी लोग रोज़ स्नान नहीं कर सकते और स्नान अमीरी ठाठ की चीज़ समझी जाती है, पर प्रकृति के उपासक होने के कारण हरएक स्त्री और पुरुष अपने शरीर को सुन्दर और साफ़ रखने की कोशिश करते हैं। शहरों के गली कूच भी साफ सुथरे दिखाई देते हैं। खूबसूरती की क़दर करने का भाव उनमें पाया जाता है, कहीं गन्दगी के ढेर आदि देखने में नहीं आते जैसे कि भारतवर्ष के शहरों और गावों में देखे जाते हैं। शीतप्रधान देशों में मज़दूरों के अन्दर के कपड़े इतने साफ़ सुथरे नहीं होते। इटली में भी मैंने लोगों को अधिक साफ़ सुथरा नहीं देखा जैसा कि अमरीका के लोगों को मैंने पाया था, फिर भी भारतवर्ष की अपेक्षा शहरों की सफ़ाई बहुत बढ़ चढ़कर है। सड़कें बड़ी साफ़ सुन्दर हैं और मकानों की बनावट में भी शिल्पकला का ध्यान रक्खा जाता है। य सब बातें शिक्षाप्रचार से भारतवर्ष में बहुत शीघ्र आसकती हैं और स्वाधीन होने पर बहुत थोड़े परिश्रम से हम अपने देश को स्वर्गधाम बना सकते हैं।

यूरोप के लोगों में आठवीं बड़े महत्व की बात जो है वह है धार्मिक सहनशीलता । हर एक मनुष्य अपने विचारों में स्वतन्त्र है और दूसरे के स्वतन्त्र विचारों की क़दर करता है। यहां छोटी छोटी बातोंके लिये दंगे नहीं हो जाते, जैसे भारतवर्ष में हिन्दू मुसलमान छोटी छोटी बातों के लिये आपस में लड़ मरते हैं, एक दूसरे को शत्रु समझते हैं, मसजिदों के सामने बाजा बजाने पर दंगे फ़िसाद कर देते हैं, ऐसी बातें यूरोप में देखने में नहीं आतीं। बहुत वर्ष हो गए कि यूरोप के लोगों ने इस जंगलीपन को छोड़ दिया; भारतवर्ष अभी तक इस बर्बरता के पञ्जे में फंसा है।यूरोप में पबलिक जीवन मे एक दूसरे के आराम, दुःख सुखका खयाल किया जाता है। यहाँके नागरिक यह समझते हैं कि जो हक़ हम अपने लिये चाहते हैं वह हमें दूसरों को भी देना चाहिए, इसलिए वे परस्पर 'give and take' अर्थात् देना और लेना के सिद्धान्तपर अमल करते हैं। इनमें धर्मान्धता बहुत दर्जे तक दूर हो चुकी है, वे मज़हब को इतना महत्व नहीं देते,बल्कि सामाजिक जीवन को सुखी बनाने का अधिक प्रयत्न करते हैं। भारतवर्ष में भी इसी प्रकार का प्रयोग होना चाहिए।मन्दिरों में बार बार निरर्थक घंटे घड़ियाल बजाने की कोई आवश्यकता नहीं और न मसजिद में ज़ोर ज़ोर से चिल्ला चिल्लाकर अज़ां देने की ही ज़रूरत है। ये पुरानी बाबा आदम की बातें अब बन्द कर देनी चाहियें और नए युग के अनुसार मज़हब को सच्चरित्रता का जामा पहिनाना चाहिए। पवित्र जीवन ही सच्चा मज़हब है। ईश्वर का ध्यान शान्ति

से बैठ कर मन्दिरों और मसजिदों में कर लेना उचित है। प्रत्येक मजहब वाले को अच्छे चाल चलन वाले स्त्री पुरुष पैदा करने का प्रयत्न करना चाहिए और निरर्थक बातों के लिये आपस में लड़ना छोड़ना चाहिए। यूरोपके लोग इस मजहबी नादानीसे निकल गए, वे इन्सानियत को समझने लगे और भिन्न मत वालों को काफ़िर या म्लेच्छ नहीं समझते, जो थोड़े बहुत उनमें ऐसे दीवाने हैं भी, उनको कोई अच्छी निगाह से नहीं देखता। ऐसी ही दशा हिन्दुस्तान में आनी आवश्यक है। जो बातें विचार स्वातन्त्र्य में बाधा डालने वाली हैं उनको बाहर निकाल देना उचित है। मुसलमानों और हिन्दुओं के झगड़े तभी बन्द हो सकते हैं जब मौलवी और 'मुल्लाओं,' पण्डितों और पुरोहितों का जहरीला प्रभाव जनता पर से उठ जाय, इस लिये मेरे विचार में जनता को बहुत शीघ्र धर्मान्धता के गहरे गढ़े से निकालना चाहिए और उन्हें धार्मिक सहनशीलता की शिक्षा के साथ साथ इन्सानियत का सच्चा धर्म सिखलाना उचित है। तभी भारतवर्ष में सुख और शान्ति हो सकेगी।

नवा गुण जो यूरोप के लोगों में भारतीय यात्री देखता है वह है उनकी कार्य में संलग्नता। जिसे देखो वही अपने काम में लगा हुआ है, किसी का व्यर्थ बकवाद करने की फुरसत नहीं। फ्रांस, जर्मनी, इंगलैंड, हालैंड और स्वीडन आदि देशों में घूमने से यात्री को पता लगता है कि यूरोप के लोगों का जीवन शृंखलाबद्ध है। उनके सब काम समय पर होते हैं। समय पर खाना, समय पर सोना, समय पर काम करना, समय पर खेलना, और

समय पर नाच रंग तमाशे देखना—सब कुछ घड़ी की तरह ठीक समय पर होता है। जैसे हिन्दुस्थान में लोग एक दूसरे की निन्दा चुगली करने, एक दूसरे की बुराइयों की आलोचना प्रत्यालोचना करते दिखाई देते हैं, जैसे भारत में दुकानों पर बैठे लोग मक्खियां मारा करते हैं ऐसा यहां देखने में नहीं आता। यूरोप में दुकानें शाम को बन्द हो जाती हैं और नागरिक लोग घूमने फिरने, नाच तमाशे देखने, व्याख्यान आदि सुनने, मित्र यारों से मिलने में अपना समय बिताते हैं। इसके विपरीत हिन्दुस्थान में रात के बारह बारह बजे तक दुकानें खुली रहती हैं और दुकानदार लोग ग्राहक की इन्तज़ार में ऐसे बैठे रहते हैं जैसे बगुला मछली के ध्यान में। अपनी तन्दुरुस्ती बिगाड़ कर, अपने को नपुंसक बना, हिन्दुस्तानी दुकानदार पैसा पैदा करते हैं और जीवन का कुछ भी सुख उन्हें नहीं मिलता। उनका शरीर बड़ा भद्दा, बड़ा बेडौल हो जाता है और उन्हें अजीर्णता की शिकायत बराबर बनी रहती है। यूरोप के दुकानदारों की तरह यदि भारतीय दुकानदार अपने धन्धे को बाक़ायदा बनालें, सब काम नियम पूर्वक करें, शाम को दुकानें बन्द कर दें, रात को व्यायाम शालाओं में आया करें और फ़ुरसत निकाल कर अख़बार पढ़ें तथा खेल तमाशों में शरीक हों तो उनका जीवन भी सुखमय बन जाय। यूरोप के लोगों का फ़िज़ूल झगड़े करने की फ़ुरसत नहीं। छोटी छोटी बातों के लिए लड़ने की उनको छुट्टी नहीं, इसीलिए उनमें व्यर्थ के झगड़े नहीं होते, हां जब कोई

गम्भीर प्रश्न उपस्थित हो जाय, जिस पर उनका आन मान, समग्र देश की स्वतंत्रता खतरे में पड़ती हो तो वे अपनी सारी शक्ति लगा कर उस क़ौमी समस्या को हल करने की कोशिश करते हैं।

अपने नित्य के जीवन में वे अपने व्यापार की वृद्धि करने, अपने परिवार की आर्थिक दशा सुधारने और अपने देश की अवस्था से वाकिफ़ रहने की चिन्ता रखते हैं। अपने ग्राहकों के साथ उनका व्यवहार बड़ी मिलनसारी का रहता है और वे सदा मीठे वचनों से अपने ग्राहक को खुश रखने की चेष्टा करते हैं। ग्राहक खुश रहे, उसको कोई असुविधा न हो, उनको प्रसन्न करने के कौन से उपाय हैं, इन बातों को वे निरन्तर सोचते रहते हैं। मामूली से मामूली ग्राहक के साथ बड़ा अच्छा बर्ताव करते हैं। वे हिन्दुस्तानी दुकानदारों की तरह मुर्गी को मारकर उसके पेट में से एक ही बार सोने के अण्डे निकालने का यत्न नहीं करते। बहुत से हिन्दुस्तानी दुकानदार ऐसे बदतमीज़ होते हैं कि वे ग्राहकों के साथ (यदि वे गांव के भोले भाले निर्धन लोग हों) गाली के बिना बात ही नहीं करते, बहुत से एक बार सौदा देकर फिर लौटाने का नाम नहीं लेते। यदि ग्राहक के वह चीज़ पसन्द न आवे और वह उसे वापिस करना चाहे तो दुकान पर ही झगड़ा हो जाता है। यूरोप में, इटली को छोड़कर, प्रायः सब देशों में लोग काल-चक्र की तरह अपने अपने काम में लगे रहते हैं। यही कारण है कि उनका मस्तिष्क नई नई बातोंके आविष्कार करने के योग्य बना रहता है, और वे कठिन समस्या उप

स्थित होने पर घबरा नहीं जाते। हिन्दुस्तान में आलस्य और प्रमाद की अधिकता के कारण समाज में भयकर बुराइयां उपस्थित हो गई हैं। निकम्मे ठाले लोग बुराइयों की रचना करने के सिवाय दूसरा काम नहीं करते। अतएव देश हितैपियों को चाहिए कि वे जाति के जीवन को नियम बद्ध बनावें। सब काम बाक़ायदा करने की शिक्षा लोगों को दें। शहरों के चौधरी दुकानदारों की दुकानें खोलने और बन्द करने का समय निश्चित करें। व्यायाम शालाएँ और क्लबें खुलवाएँ ताकि लोग आपसमें मिलना बैठना सीखें और लोगों के दिमाग़ लड़ाई झगड़ों की बातों से अलग हों और देश में नीरोग जीवन आ जाय।

यूरोपके इन उपर्युक्त गुणों को बतलाने के बाद मैं एक विशेष बातकी विवेचना यहा पर करना चाहता हूँ। अपने व्याख्यानों में, अपने प्लेटफार्मों पर, हम लोग बराबर यूरोप की सभ्यता को कोसा करतेहैं और यूरोप वालों को प्रकृतिक गुलाम बताकर उनको बुरा भला कहा करते हैं। क्या यह न्याय है? प्रकृति के उपासक उस यूरोप को मैंने देखा, सचमुच मुझे वह बड़ा पसन्द आया। मैं एक तर्फ तो अध्यात्मवाद की दुहाई देने वाले अपने देश के नपुंसक लोगों को देखता हूँ और दूसरी तर्फ प्रकृति के उपासक, किन्तु देश की स्वाधीनता के लिए प्राण अर्पण करने वाले, यूरोपियन लोगों को पाता हूँ। मुझे यदि इन दो समाजों में किसी एक को चुनने के लिए कहा जाय तो मैं यूरोपियनों के दल में चला जाऊंगा और इस लोक को स्वर्ग बनानेवाले प्रकृतिवादी लोगों

का साथ दूंगा। जब मैं पेरिस में था तो मेरे एक हिन्दुस्तानी भाई ने मुझे एक फ्रांसीसी नौजवान की बात सुनाई थी, जिसे मैं यहां लिखता हूं।

बीस वर्ष की आयु का सुन्दर फ्रॉसीसी नवयुवक गिलबर्ट, अपने कमरेमें सन्ध्या के समय बैठा था। बिजली की शुभ्र रोशनी उसके कमरेमें जगमगा रही थी। आज ही उसे लड़ाई पर जानेका हुक्म मिला है और उसने उसे पढ़कर देते ही मेज पर रख दिया है, और सामने दीवार में जड़े हुए बड़े आइने में अपने खूबसूरत चेहरे को देख रहा है। साबुन से अच्छी तरह मुंह हाथ धोकर वह अपने बालोंको कघी कर रहा था कि उसके कमरे की घंटी बजी। गिलबर्ट ने दरवाजा खोल दिया। एक नवयुवक हँसता हुआ अन्दर चला आया, और उसके पास आकर कुर्सी पर बैठ गया। नवागत बोला—

"क्यों, तुम्हारे नाम का हुक्म आगया ?"

गिलबर्ट न मुस्कराकर कहा—"कल दिन के बारह बजे की गाड़ी से मैं उन पाजी जर्मनों की भरम्मत करने के लिए जा रहा हूं।"

उसके मित्र ने हंसकर कहा—"अरे शौक़ीन, कल तो तुझे लड़ाई पर जाना है और आज तू ठाट-बाट से सज रहा है, आज भी ऐसी शान।"

गिलबर्ट इस पर खिलखिला कर हँसा और बोला—"तो तुम्हारी क्या मर्जी है, मोहर्रमी चहरा बनालूं ? दोस्त! जितने दिन जीना उतने दिन मजे से जीना।"

उसके मित्र ने कहा—"जाते ही गोली लग गई तो यह शान कहां जायगी ?"

गिलबर्ट ने अपने प्यारे मित्र का हाथ दबा कर कहा—"बस यही जिन्दगी है। इसी तरह की मस्तानी जिन्दगी, इसी तरह का शौक जो आज तक किया है, उस सबको वैसेही छोड़कर— उसको अपने प्यारे फ्रांस के लिये कुरबान कर-उसकी आज़ादी के लिये मरजाना, बस यही जिन्दगी है।

उसके मित्र की आखों में स्नेह के आसू आगये और वह उसको प्रेमालिंगन कर बोला -"सच है मेरे प्यारे गिलबर्ट, फ्रांसीसी नौजवान की बस यही जिन्दगी है और यही उसका स्वर्ग है।"

इस प्रकार का प्रकृतिवाद यूरोप के पुरुष और स्त्रियों में है, जो अपनी जननी जन्मभूमि का आर्तनाद सुनकर अपने सारे विषय भोगों पर लात मार मौत का मुक़ाबिला करने के लिये खड़े होजाते है। इसके विपरीत अध्यात्मवादी हम लोग अपनी प्राचीन सभ्यता रखने वाले राम और कृष्ण के वंश काअभिमान करने वाले कुछभी स्वार्थ त्याग अपनेदेश के लियेनहीं कर सकते।

हमारे अध्यात्मवाद की संसार उस समय क़द्र करेगा और उस को श्रेष्ठतम मानेगा जब हम प्रकृतिवादी यूरोप के सब गुणों को धारणकर फिर उससे श्रेष्ठतर अन्य सात्विक गुणोंको प्रकट कर दिखलाएंगे। कोरी थोथी बातों से हमारा अध्यात्मवाद श्रेष्ठतर नहीं हो सकता। इसलिए हमारा यह परम कर्तव्य है कि हम व्यवहारिक धर्म के अनुयायी हों और सब से पहिले अपने देश को स्वाधीन करने में सब शक्तियां लगा दें, उसके लिए सब प्रकार के बलिदान करें, जात पात के झगड़ों को मिटा दें, छूत छात को समूल नष्ट कर दें, खाने पीने में धर्म का ढकोसला न लगावें, हिंदू मुसलमान जनता को देश प्रेम की शिक्षा दें और धर्मान्धता को मिटा कर लोगोंमें विचार-स्वातन्त्र्य भरें। यह भी भली प्रकार समझ लें कि संगठन जाति का प्राण है। संगठन लाने वाली सभी बातों को हमें इकट्ठा करना चाहिए और संगठन की विघातक सभी बातों को हमें दूर करना उचित है। दो चार महापुरुष किसी जाति म उत्पन्न होने से वह जाति बड़ी नहीं हो सकती। जैसे, समाज में, पांच दस करोड़पतियों के होने से, सारी जाति धनवान नहीं कही जा सकती, इसी प्रकार जब तक समाज के अधिकांश लोगों का जीवन पवित्र न हो, जब तक जन साधारण में संगठन के भाव न भरे जायें, तब तक वह जाति अथवा समाज बलवती और महान् नहीं हो सकता। राष्ट्र की महत्ता उसके सब मेम्बरों के अच्छे गुणों को जोड़ने से होती है, दो चार महापुरुषों को पैदा करने से नहीं। इसलिए हमें अपने दो चार महापुरुषोंका अनुचित

अभिमान न कर अपने जन साधारण के सुधार की चेष्टा में लग जाना चाहिए ताकि हमारी सामूहिक शक्ति महान् हो। तभी हमारी सभ्यता गौरवान्वित होगी।

अन्त में मैं ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूं कि मेरे देशवासी मेरे विचारों को बड़ी उदारता से पढ़े और उनका यथार्थ भाव समझें। मैंने कभी अपने जीवन में मांस और शराब का सेवन नहीं किया और मैं पातिव्रत धर्म का अनन्य भक्त हूं। पुरुषों के लिए भीमैं वही नियम समाज में देखना चाहता हूं जिनका पालन हम स्त्रियों के लिए अत्यावश्यक समझते हैं, अर्थात् मैं स्त्री और पुरुष दोनों के लिए समान अधिकार चाहता हूं। अपनी सभ्यता के गुणों को मैं भूल नहीं गया, लेकिन साथ ही मैं वर्तमान युग के धर्म को स्पष्ट रूप से देखता हूं। समय के साथ चलने वाली जाति जीवित रहती है, और जो काल की गति के अनुसार नहीं चलती, वह जर्जरित होकर मिट्टी में मिल जाती है। अतएव आओ हम काल की गति के मुताबिक भारतीयों का संगठन करें, उनमें नई जीवनप्रद बातें भरें, उनको यरोप के गुणों से विभूषित करें। यदि हमने इसकी अवहेलना की तो प्रकृति के अटल नियमों के अनुसार हमारा नामो निशान मिट जायगा।

—❀❀❀—

ग्यारहवाँ अध्याय

भारत को वापिसी

आज रविवार था। लाइडट्रेस्टीनो कम्पनी का एक्वीलेया नामक स्टीमर जिनोआ से, पन्द्रह फरवरी सन् १९२४ को, रवाना होकर आज १७ फरवरी को नपल्स की खाड़ी के बन्दरगाह में लंगर डाले हुए था, और उस पर सवार होने वाले यात्रियों को बुला रहा था। आज सवेरे दस बजे मैं सुरी सुरी मेंड होटल से स्टीमर की ओर चला। टिकट मेरे पास था ही और मेरा केबिन पहले से तै हो चुका था। जब मैं स्टीमर पर पहुंचा तो वहां के नौकर ने झट मुझसे मेरे कमरे का नम्बर पूछकर मुझे वहां पहुंचा दिया। मेरा बड़ा सूटकेस कुक कम्पनी वालों ने जिनोआ से ही मेरे कमरे में रखवा दिया था।

इटली की दो कम्पनियाँ, लाइडट्रेस्टिनो और मेरिटिमा इटालिआना, के स्टीमर बम्बई से इटली आते जाते रहते हैं। ये स्टीमर प्रायः प्रत्येक मास की पहली और पन्द्रहवीं तारीख को बम्बई से योरप आते हैं। ये दोनों कम्पनियां मिली हुई हैं। (Llord Trestino) लाइडट्रेस्टीनो का नाम अधिक प्रसिद्ध है और उसी के दफ़्तर में इन जहाज़ों का टिकट मिलता है। बम्बई से चलते समय मैंने इस कम्पनी के स्टीमर पिलसना का टिकट कुक कम्पनी की मारफ़त खरीदा था, लौटती बार मैंने सीधे इस कम्पनी के दफ़्तर में आकर टिकट लिया था। क्योंकि मैं एक

वर्ष के अन्दर ही यूरोप से लौटने लगा था, इस कारण कम्पनी ने पाच फीसदी कम दाम मुझ से लिया। लौटती बार मुझे छयालीस पौंड और सोलह शिलिंग दूसरे दरजे के एक टिकट के देने पड़े।

इस बार मुझे बड़ा अच्छा दो बर्थ का हवादार कमरा मिला। इसमें कोई दूसरा मुसाफिर नहीं था, बम्बई तक मैं अकेला ही इसमें आया। एकीलेया साढ़े ग्यारह हजार टन का बड़ा साफ सुथरा स्टीमर है। मैंने आज दोपहर को यहा भोजन किया। भारत से आते समय तो मैंने शुरू से ही अपने कमरे में भोजन करना आरम्भ किया था, पर इस बार मैं भोजनशाला में जाकर भोजन करने लगा। स्टीमर में यात्री कम थे अतएव शान्ति से समय बीतने लगा।

× × × × ×

हमारे दरजे में इटालियन यात्री अधिक थे, इनके सिवाय दो अंगरेज पुरुष और एक स्त्री, एक स्विटजरलैण्ड का निवासी और एक जर्मन पादरी, इतने यात्री और थे। एक रूस की रहने वाली लेडी अपनी डेढ़ बरस की लड़की के साथ तितली की तरह इधर उधर घूमती थी। ये सब मुट्ठी भर मुसाफिर दूसरे दरजे में थे। फरवरी का महीना बड़े आनन्द का होता है। स्वच्छ नीले आकाश के नीचे खिल-खिलाती धूप में हमारा स्टीमर अठखेलियां लेता हुआ भूमध्य-सागर में बसख की तरह तैरता हुआ जा रहा था। इस ऋतु में क्या सुख है, क्या नशा है।

सब से पहले मेरा परिचय उस रूसी लेडी से हुआ। उसकी लड़की का नाम अतिया था। यह नाम सुनकर मैं चौंका, मेरे कान खड़े हो गए। यह प्यारा भारतीय नाम इस चपला परी का!

मैंने उस देवी से उसका नाम धाम पूछा तो पता लगा कि आप रूस की रहने वाली हैं। हिन्दुस्तानी बोल्शविकों की प्रगति का पता लगाने के लिये भारतीय सरकार ने सुराहालखाँ नामी एक भारतीय मुसलमान टिकटिकी को मास्को और पीट्रोग्राड भेजा था। वहां जाकर उस टिकटिकी ने इस देवीसे परिचय प्राप्त किया। यह रमणी चूंकि अंगरेजी, फ्रांसीसी, जरमन और रूसी भाषाओं की ज्ञाता थी इसलिये इससे उसका बड़ा काम निकला। दोनों,रूसी जेल में भी रहे। परिणाम निकला—टिकटिकी का इस युवती पर प्रेम। टिकटिकी का रंग काला, शक्ल भी ऐसी वैसी, और तालीम भी साधारण थी,पर वह था धुन का पूरा, सो हाथ धोकर उसके पीछे पड़ गया और अपने उद्योग में सफल हुआ। बालशिविक सरकार के विरुद्ध होने के कारण इस रूसी रमणी को अपना देश त्यागना पड़ा। भारतीय सरकारने इसे भारत की नागरिकता का अधिकार दे कर झट पासपोर्ट दे दिया। क्यों न हो, जिनकी अपनी जन्मभूमि है वे बेचारे तो पासपोर्ट के बिना विदेशों में धक्के खाते फिरें और विदेशी भारत की नौकरशाही के कृपाभाजन बन कर, सहज में पासपोर्ट पाजाएँ। यह रूसी लेडी हिन्दू धर्म की भक्त थी, इसलिये उसने यह सोचा कि एक हिन्दुस्तानी के साथ विवाह कर लेने से हिन्दू सभ्यता के अध्ययन का

बड़ा अच्छा मौका मिलेगा, इस कारण उसने खुशहालखा के साथ शादी करली। उसी हिन्दुस्तानी टिकटिकी की यह कन्या, अतिया, थी।

मेरे साथ इस देवी का शीघ्र बड़ा अच्छा परिचय हो गया। हम दोनों बराबर धार्मिक विषयों पर चर्चा किया करते थे। अपने सरल स्वभाव के कारण इसने सब यात्रियों को अपने वश में कर लिया। यह इटालियन भाषा भी बोलती थी। भाषा में अद्भुत शक्ति होती है। जहाज के सभी कर्मचारी इस युवती पर मुग्ध हो गए। सभी उस बालिका अतिया से खेला करते थे।

इस स्टीमर पर कई भारतीय डेक पेसन्जर थे। कुछ सिन्धी सौदागर अपने कारिन्दों के साथ भारत लौट रहे थे। दो अन्य भारतीय बन्धु मेरे अत्यन्त परिचित निकल आए। जब मैं बर्लिन में था तो वे मीथहापर थे। उनके साथ खूब बातचीत होती थी। प्राय हम लोग ताश और ड्राफ्टस खेला करते, सिन्धी बन्धु मेरे लिए हिन्दुस्तानी खाना बना दिया करते थे।

इस प्रकार पोर्टसैय्यद तक सुख पूर्वक पहुंच गए। योरुप की हद खतम हो गई, एशिया का आरम्भ हुआ। ऋतु बदल जाने के कारण मैंने, जहाज के लाल सागरमें पहुंचते ही, भारतीय वस्त्र पहन लिए—वही खद्दर का कुरता, तहमत और कुरबी-बूट की जगह स्लीपर, बस अब क्या था, स्टीमर पर हल्ला मच गया। मुझे भोजनशाला में आने से रोक दिया गया। स्टीमर के कप्तान ने मुझे बुलाकर धमकाया और कोट पतलून पहनने पर

आरम्भ करना चाहा। मैंने योरुपीन पोशाक पहनने से इन्कार कर दिया और स्पष्ट कह दिया कि अब मेरा देश निकट आजाने से मैं अपने देश की पोशाक ही पहनूंगा। भोजन प्रबन्धक (Steward) ने मुझ से कह दिया कि हिन्दुस्तानी पोशाक में रहना है तो अपने कमरे में खाना खाया करो, इस पोशाक में भोजनशाला में आने की मनाही है। मैंने लघन (Hungr Strike) शुरू कर दिया।

स्टीमर पर लोगों को कुछ काम धन्धा तो होता ही नहीं, मेरे लघन की चर्चा पहले दूसरे दर्जे के सभी यात्रियों में खूब होने लगी। यात्री मुझे देखने आने लगे। पहला दिन गुजर गया, दूसरा भी गुजर गया। यात्रियों में तरह तरह की बातें होने लगीं। इटालियन यात्री मेरे बड़े प्रेमी थे, वे सब मिलकर सलाह करने लगे। रूसी लड़की ने कप्तान को जाकर खूब समझाया। आखिर कार्याध्यक्ष महाशय आए और दूसरे दर्जे के सब यात्रियों से पूछताछ की। इटेलियन, ग्रिक, जर्मन पादरी और दोनों अंगरेज पुरुष, किसी ने मेरी पोशाक पर एतराज नहीं किया। सभी ने कहा कि सत्यदेव अपनी पोशाक में भोजनशाला में आवे, हमें कुछ आपत्ति नहीं। एक अंगरेज औरत, जिसके साथ एक बड़ा कुत्ता था, मेरे सख्त विरुद्ध थी। उसने बड़ा उत्पात मचाया पर उसकी तनिक परवाह न कर जहाज के उस कर्मचारी ने मुझे भोजनशाला में आने की आज्ञा दे दी। मैं अपने खद्दर के कपड़ों में सजकर भोजनशाला में गया और लगा भोजन करने।

जब वह अंगरेज स्त्री भोजनशाला में आई और उसने मुझे बैठे देखा तो आग बबूला हो उठी। उठ कर, "मेरा खाना मेरे कमरे में लाओ, मैं यहां हर्गिज न खाऊंगी!" ऐसा कह चिल्लाती हुई भोजनशाला से चली गई। सब हंसने लगे। मैं भोजन कर ऊपर डेक पर आया। उस स्त्री ने मेरे विरुद्ध बड़ा आन्दोलन किया, पर किसी ने उसकी एक न सुनी। आखिर एकदिन शामको वह मुझ से बोली—

"आपको औरतों की इज्जत करनी चाहिए।"

"मैं सदा देवियों की बड़ी प्रतिष्ठा करता हूं।"

"आप मेरे लिए, मुझे खुश करने के लिए, बम्बई तक कोट पतलून पहन लें।"

"मैंने योरुप में आप लोगों की पोशाक पहनी। अब अपने देश के निकट मुझे मेरी क़ौमी पोशाक पहननी चाहिए। यही मेरा फर्ज है।"

इस पर उस स्त्री को बड़ा गुस्सा आया। चिल्ला कर बोली—

"तुम अगर किसी अंगरेजी स्टीमर पर होते तो, हरगिज ऐसी गुस्ताख़ी न कर सकते।"

मैंने हंसकर, कहा—"देवी, मैं ऐसे अंगरेजी स्टीमर पर कदापि सफर न करता।"

× × ×

छः वर्षों के बाद आज पहली बार मैंने एक अंगरेजी उपन्यास 'मिडविन्टर' पढ़ डाला। जरमनी के डाक्टर माइसनर ने मेरी आंख अच्छी करदी, मैं अब पढ़ने लिखने लायक हो गया हूं, डेक पर बैठा हुआ मैं ईश्वर को धन्यवाद दे रहा था।

भारत में बहुत लोग आंखों से दुःखी हैं उनके सुभीते के लिए धर्मात्मा प्रोफेसर माइसनर का नया पता यहां लिख देना ठीक होगा, ताकि मेरे प्रेमी, प्राफेसर महोदय से पत्र व्यव हार कर अपनी आंखों का दुख दूर करा सकें—

Professor W. Meisner
University Augen Klinik

Greifswald (Germany)

क्या ही अच्छा हो यदि विलक्षण बुद्धि वाले नवयुवक जर्मनी जाकर आंखों का इलाज करना सीखें।

× × × ×

कल भारत का किनारा दिखाई देगा। जहाज में आज सब लोग प्रसन्न हैं। पानी में निवास करते हुए सोलह दिन बीत गए, भूमि के निवासी अब भूमि पर उतरने के लिए लालायित हो रहे थे। मैं भी जन्मभूमि के दर्शन करने के लिए अधीर हो रहा था। सवेरा हुआ। आज पांच मार्च का दिन है। भारत का किनारा दूर दिखाई देने लगा। कैसा विशाल मेरा देश है! यात्री अपनी अपनी दूरबीनें लगाकर पूर्व की ओर देख रहे हैं। इधर

लियन बड़े खुश हैं, वे भारत आकर अच्छी अच्छी नौकरियाँ पायेंगे। स्विस बड़ा खुश है, वह अपनी घड़ियों की दुकान को जाकर सभालेगा। अंगरेजों का चेहरा प्रफुल्लित है, वे अपने शासित देश में मजा लूटने आ रहे हैं।

मैं ठंडी आहें भर रहा था। जिस भारत के दर्शन करने के लिए मैं इतना उद्विग्न था, उसके आज निकट आजाने पर मेरा हृदय टुकड़े टुकड़े हो रहा था। सामने बम्बई का बन्दरगाह आने लगा और मेरी आंखों से अश्रुधारा बह निकली। मैं गुलाम देश में आ रहा हूं। मेरा इतना महान देश, ऐसे सुन्दर बन्दरगाहों से सुसज्जित, ऐसे वीरपुरुषों की जन्मभूमि, वह देश गुलाम, हा! मेरी छाती फटने लगी। योरुपमें आज़ादी से घूमा, अब यहां मेरी अपनी जन्मभूमिमें वही टूटर सी० आई० डी०, वही अत्याचार, वही विदेशियों की मदान्धता, वही हिन्दु-मुसलमानों के झगड़े देखने में आवेंगे। परमात्मन, परमात्मन्! क्या हमारे पापों का प्रायश्चित्त अभी खत्म नहीं हुआ? क्या यह नीच दासता नहीं छूटेगी? क्या हम कभी स्वाधीन देशों के वर्गों की तरह न होंगे? नाथ, यह गुलामी का दुख अब असह्य है, अब यह हमसे सहा नहीं जाता। हे पतितपावन्! हे दुःख निवारण! अति शीघ्र इस दुखी देश को स्वतन्त्र कीजिए।

× × × ×